अँधेरे के विरुद्ध

आजादी के बाद का भारत ! युगों तक अँधेरी सुरंग में गुजरने के बाद भारतीय इतिहास को आलोक का पहला स्पर्श ! लेकिन इसके साथ ही एक के बाद एक 'मोहभंगों' का अंतहीन सिलसिला—अतीत की विसंगतियों तथा वर्तमान की विडम्बनाओं के बीच पिसती हुई निरीह जनता ! विसंगतियों तथा विडम्बनाओं का यह द्वन्द्व नगरों में उतना प्रखर नहीं हुआ जितना गाँवों में : बिजली, ब्लॉक आफिस, अस्पताल, रेडियो और सड़कों ने गाँवों को एक ओर नगरों तथा आधुनिक सभ्यता से जोड़ा तो दूसरी ओर स्वयं से ही दूर भी कर दिया । 'इतिहास के पन्ने बदले लेकिन किस्से वही रहे ।' रूढ़ियों ने रूप बदला लेकिन आधुनिक माध्यम उपलब्ध कर वे और सशक्त हो गईं ।

...अँधेरे के विरुद्ध आजादी के बाद के इस परिवर्तित ग्राम्य परिवेश का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करता है । बी० डी० ओ० नरेन्द्र और डाक्टर इस दुःस्वप्न के एक साथ साक्षी और भोक्ता हैं, इस सनातन अँधेरे के विरुद्ध लड़ते हुए...वसंतपुर एक गाँव नहीं है—एक अंतहीन यात्रा है, अतीत के निर्मोक से निकल कर वर्तमान के जाले में फड़फड़ाती हुई यात्रा ! न यह उपन्यास कोई 'संदेश' है—वह केवल वसंतपुर की इस यात्रा का अनुक्षण साक्षी है : फरेब, जालसाजी, साम्प्रदायिकता, राजनैतिक दाँवपेंच, दलित वर्ग के उन्मेष के नाम पर स्वार्थ-समर के लिए उनका उपयोग, टेनी बाबा और सुग्गी के रूप में कराहता अतीत और बी० डी० ओ० नरेन्द्र (जो गाँव का भूतपूर्व जमींदार भी है) के रूप में 'समझौतों' के सामने पस्त वर्तमान—वसंतपुर की एक-एक साँस का साक्षी !

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,

शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय,

भारत सरकार की ओर से भेंट।

अशोक प्रेस

द्वारा प्रस्तुत

'भूदानी सोनिया'

और 'भागते किनारे'

के बाद

उदय राज सिंह की

यह छठी महत्त्वपूर्ण

कृति

'अंधेरे के विरुद्ध'

(उपन्यास)

अंधेरे के विरुद्ध

उदय राज सिंह

अशोक
प्रेस
पटना-६

विजय मोहन सिंह

को

सस्नेह

कभी-कभी जिन्दगी भी खूब तफरीह कर लेती है। ऐसी, कि क्या कोई कभी कल्पना भी कर सकेगा ? जिसके साये से वह होश सँभालते ही निकल भागा था, उसी गोशे में फिर जाना ! हाय री किस्मत, लाख भागने पर भी जान न बची। उसी दमघोट वातावरण में फिर जीना !····उसने खत मेज पर रख दिया।····क्या किया जाय ! रद्द करा दूँ इसे ?····मगर यह अच्छा न होगा। लोग शक करेंगे। काम से भागता है। आरामतलब। एक ही जगह चिपका रहना चाहता है।········चलो, कूच करो यहाँ से। गुलामी में आजादी कैसी !········उसने खत जेब में डाल दिया।····अभी हल्ला करने से कोई फायदा नहीं। यहाँ के सब काम निबटा लूँ, तभी बात फैले। बहुत सारी चीजें पेंडिंग पड़ी हैं। रात-दिन एक करके सभी कामों को 'अप-टु-डेट' कर देना है।········वह फिर फाइलों में खो गया।

मगर तबीयत लगी नहीं। मन उचट गया था। जो आएगा वह इनमें उलझेगा—मैं तो चला।····मगर वह गालियाँ जो देगा—अपना भार मुझ पर फेंक कर चला गया।····देने दे गाली, मैं उसे कान से सुनूँगा थोड़े।

इस माथापच्ची से फायदा !················खैर, चलो, कुछ फाइलों को तो निबटा लूँ ।····

'बड़ा बाबू, कर्जवसूली की फाइल पर मैंने अपना नोट दे दिया। इसे अब आप सदर ऑफिस में भेज दें।····हाँ, उस जमीन का मुआयना मैं जल्द ही खत्म कर देना चाहता हूँ, नहीं तो बाहर जाने में मुझे देर हो जाएगी। स्टाकिस्टों से भी सब रिपोर्ट मँगा लें। मैं चाहता हूँ कि सब रिटर्न आप जल्द तैयार कर दें ताकि मैं दस्तखत कर सब काम खत्म कर दूँ।'

'हुजूर, इतनी जल्दी क्या है ? कर्मचारियों की रिपोर्ट आने ही वाली है, फिर रिटर्न तैयार होते क्या देर लगेगी ?'

'नहीं, नहीं, जब काम करना ही है तो अच्छा है जल्द ही हो जाय। किसी काम को लटकाना ठीक नहीं।'

'हुजूर, लटकाने से मेरा मतलब नहीं है। बात यह है कि सब काम जरा आफियत से·········'

'नहीं, नहीं, जरा तेजी से अब हो।'

'जैसा हुक्म आपका !·····'

बड़ा बाबू जरा सन्देह भरी दृष्टि से अपने साहब को देखने लगे। आखिर आज माजरा क्या है !

वह फिर डूब गया फाइलों में। पन्ने पर पन्ने उलटता जाता। आज नोटिंग में कलम बहुत सावधानी से मगर तेज चलने लगी है। एक तरह की अनासक्ति उसे घेरे जा रही है—सारे वातावरण, सारे माहौल से।····टिकट कट चुका—अब कूच करना है।

फिर पिछले तीन वर्षों का लेखा-जोखा। उफ, कैसी जिन्दगी ! सड़ाँध

से भरे हुए बिलबिल नाबदान की दुनिया ! हर ओर भ्रष्ट व्यवहार—चोरी, पैसे का बाजार, कोई भी 'क्राइम' छूटे नहीं । इस सड़ी जिन्दगी से शायद वहाँ नजात मिले । अपनी दुनिया, अपने लोगबाग ! शायद वे लोग उसके प्रति हमदर्द हों ! यहाँ तो कौड़ियों का बाजार बिछ रहा है । उफ, काजल की कोठरी से किसी तरह भाग निकला ! नहीं तो शतरंज के मुहरे बिछ गए थे । वह भी यहीं दफना दिया जाता । या तो 'कांसेंस' को दफना दूँ या अपने आप को दफना दूँ । और कोई चारा नहीं । जमाने की मार से मारा गया है, नहीं तो यह गुलामी वह कतई नहीं स्वीकारता, जिसके लिए मौत से भी भारी कीमत चुकानी पड़ती है । ऊपर से अफसर की वजेदारी और नीचे से बाबुओं की शतरंजी चाल । यदि दोनों की गोटी लाल न हुई तो वह मारा जाय । सब की गोली का निशाना बन जाय । राम-राम करते ये तीन साल कटे । अब नई जिन्दगी की तलाश है—हिरण तो मृगतृष्णा के पीछे-पीछे दौड़ता जाता है ।

बरसाती शाम के उभरते अँधियारे में उसकी ट्रेन रामबाग स्टेशन पर रुकती है। आसमान पर काले बादल घिर आए हैं। कुछ बूँदाबूँदी भी हो रही है।

अभी बीवी-बाल बच्चों के झमेलों से वह दूर है, इसलिए तनहा आदमी का सामान ही कितना ! एक होलडॉल, एक चमड़े का बक्स और हाथ में एक अटैची। वह झट प्लैटफॉर्म पर उतर कर कोई जानी-पहिचानी सूरत खोजने लगा।

कि इस अंचल के बड़ा बाबू उसे पहिचान कर उस ओर बढ़ आए—'सलाम हुजूर !'

'सलाम।'—उस सूरत को पहिचानने की कोशिश करता हुआ वह कुछ सोचने लगा।

'हुजूर, आपने पहिचाना नहीं।'

'माफ करेंगे, कुछ ठीक-ठीक नहीं....।'

'हुजूर, मैं रामजतन लाल, दफ्तर का बड़ा बाबू। मैं आपके अंडर काम कर चुका हूँ—हमीरपुर अंचल में........।'

'अच्छा, अच्छा, रामजतन बाबू, हाँ, हाँ, याद आया। कहिए कुशल-क्षेम....।'

'सरकार की कृपा है।....बस, सामान इतना ही है ?'

'हाँ, मैं अकेला जो ठहरा ! इससे ज्यादा सामान की जरूरत ही क्या !'

'तो अभी आपने शादी-वादी....।'

'नहीं रामजतन बाबू, अभी जल्दी क्या है ?'

दोनों मुस्कुरा कर रह गए। कुली सामान लेकर बाहर निकला। सरकारी जीप हाजिर थी। ड्राइवर ने सलामी दागी और सामान पीछे ठीक करने लगा।

'क्यों रामजतन बाबू, जीप वहाँ तक पहुँच जाएगी ? मेरा तो ख्याल है कि छः मील का रास्ता है—कच्ची सड़क, बरसात की शाम। फिर ठोरा नदी में तो बाढ़ का पानी उफना रहा होगा—ऐसी हालत में........।'

'हुजूर, आप भी कितनी पुरानी बातें याद कर रहे हैं ! इस 'बैकवर्ड' इलाके का 'डेवलपमेंट' दूसरी पंचवर्षीय योजना में बहुत जोरों से हुआ है। छः मील का कच्चा रास्ता अब पक्का रोड में बदल गया है, ठोरा नदी पर खूब चौड़ा पुल बन गया है और रामबाग से बसन्तपुर तक बसें दौड़ रही हैं।'

'जहे किस्मत ! तब तो बड़ी अच्छी बात है।'

ड्राइवर ने जीप स्टार्ट की और गाड़ी 'हाइ वे' पर भाग चली। और उसी के साथ दौड़ती आतीं बसन्तपुर की वे अतीत की तमाम तस्वीरें। इस अंचल का जर्रा-जर्रा उसे छाती से सटाने को जैसे आतुर हो उठा है। वही

बाग-बगीचे, नदी-नाले, खेत-झोपड़ियाँ—सभी उसे बरबस अपनी ओर खींच रही हैं। आज से पन्द्रह साल पहले वह इसी राह बसन्तपुर छोड़कर सदा के लिए शहर को चल पड़ा था; मगर 'पुरुष बली नहिं होत है, समय होत बलवान।' वह आज फिर उसी रास्ते एक नए जीवन की तलाश में वहीं बढ़ा चला जा रहा है।....किन्तु नहीं, इस अरसे में वे बाग-बगीचे, नदी-नाले, खेत-खलिहान—सभी बदले हैं—खूब बदले हैं और वह भी बदला है—दृष्टि भी बदली है, दृश्य भी बदले हैं।

बसन्तपुर के सीवान पर गाड़ी पहुंच रही है। वह पूछ बैठता है—'बी० डी० ओ० ऑफिस किस जगह पर है ?'

'हुजूर के गढ़ में।—'

'और रहने का क्वार्टर ?'

'उसी के एक हिस्से में।'

उसे एक धक्का लगा। वह हठात् चुप हो गया।........चलो, इसे भी बरदाश्त करना होगा। रात-दिन वही दृश्य ! उफ....! कितनी बड़ी यातना !........सोचा, अभी गाड़ी लौटाकर स्टेशन की ओर भाग चलें। यह तबादला उसे मंजूर नहीं।

'हुजूर, गाँववाले आपकी अवाई सुनकर बहुत खुश हैं। रात-दिन इन्तजार हो रहा है। सभी कहते हैं कि हमारे मालिक फिर लौट रहे हैं।'

वह हँस उठता है—'रामजतन बाबू, यह उनकी गलतफहमी है। अब उनका कोई मालिक नहीं—मालिक तो वे खुद हैं। मैं तो आज उनका एक अदना-सा सेवक होकर बसन्तपुर जा रहा हूँ।'

'यह तो आपका बड़प्पन है। मगर उन्होंने अपना पुराना श्रद्धा-भाव बनाये रखा है। गाँव के मालिक''''नहीं-नहीं, अब पूरे अंचल के मालिक जो ठहरे आप !'

'आप भी वैसी ही बातें कर रहे हैं।'

'यह हिन्दुस्तान है हुजूर, राज पलट गया मगर लोगबाग नहीं पलटे हैं।'

'ड्राइवर, जरा गाड़ी रोको।—शिवालय आ गया। जरा दर्शन कर लूँ। इस गाँव की यह रीति रही है कि जब कभी कोई व्यक्ति एक लम्बी यात्रा के बाद गाँव लौटता है तो पहले शिवजी के दर्शन कर लेता तब गाँव के अन्दर आता है।'

वह शिवालय में घुसा तो पुजारी जी ने आशीर्वाद देते हुए कहा – 'हम जानते थे कि आप पहले दर्शन करके ही तो गाँव में जायेंगे। लें यह विल्वपत्र। भगवान शंकर आपका कल्याण करें।'

श्रावणी पूर्णिमा होने के कारण शिवालय में दर्शनार्थियों की खासी भीड़ इकट्ठी थी। सभी ने उसका स्वागत किया और कुछेक तो जीप में आकर बैठ भी गए। उन्हीं में से एक ने कहा—'ड्राइवर साहब, बाजार के मोड़ पर गाड़ी रोकेंगे—मालिक का बाजार की ओर से स्वागत होगा।'

'भला यह सब करने की क्या जरूरत आ पड़ी थी ?'

'वाह, आप हमारे पुराने मालिक हैं !'

बाजार में घुसते ही जाने कितनी ही जानी-पहचानी सूरतें नजर आने लगीं। रामचन्द्र साह, सोहन साह और राम प्रसाद महाजनटोली में माला लिए खड़े हैं। बूढ़े देनी साह भी इत्र का फाहा लिये सलामी बजा रहे हैं।

महाजनटोली में फूल-माला, इत्र इत्यादि ग्रहण कर जब वह आगे बढ़ा तो देखा—इमली तले नबी मियाँ की दूकान में कुछ नई उम्र के लोग बैठे उसे देखकर कहकहा मार रहे हैं और बाहर लाल झण्डा फहरा रहा है। कभी-कभी उस पर छपा हँसिया-हथौड़ा का निशान चमक उठता है। कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर के कुछ आगे पं० वीरमणि पाठक खड़े मिले।

'ऐ, जीप रोको।'—उन्होंने छड़ी घुमाई और गरज कर जीप रुकवा दी।

'वाह, आप यहाँ आ भी गए और हमें कोई खबर नहीं !....बड़ा बाबू, पहले आपको मुझे खबर करनी थी।....आपसे हमारा पुश्तैनी सम्बन्ध है। मैं आपके स्वागतार्थ एक स्वागत-समिति बनाकर बाकायदे मीटिंग बुलाकर आपका सम्मान-सत्कार करता। यह गली-गली घूमना और हर मोड़ पर रुकना आपको शोभा नहीं देता।'

'नहीं पाठक जी, इसकी क्या जरूरत है ? बस, आपका आशीर्वाद चाहिए।'

'वाह, आप भी !....'

पाठकजी जबर्दस्ती गाड़ी में घुसकर उसकी बगल में बैठ जाते हैं। अन्दर मुड़कर देखते हैं—बेनी माधव, बिहारी, सूरज—सभी पिछली सीट पर बैठे मुस्कुरा रहे हैं। बड़ा बाबू तो छिपकिली की तरह एक कोने में सटके हुए हैं। अपने रकीबों को देखकर पाठक जी भिन्ना उठते हैं। मगर कुछ गुनगुना कर चुप हो जाते हैं। गाड़ी आगे बढ़ती है।

सुग्गी के मकान पर तिरंगा झंडा फहरा रहा है, आगे राम प्रसाद की दूकान पर जनसंघी पताका लटक रही है, फिर रमन की दूकान पर

एस० एस० पी० का लाल झंडा और बाजार छोड़ते-छोड़ते कहीं प्रसोपा का भी झंडा नजर आ गया।

'क्यों पाठक जी, बसन्तपुर में सभी पार्टियों के दफ्तर खुल गए हैं ? देखते हैं सारे हिन्दुस्तान का नक्शा यहाँ बन गया है।'

'कुछ न पूछिए, जमींदारी जाते ही यहाँ जो धाँधली मच गई कि अब कोई किसी की सुनता नहीं। सभी छोटे-मोटे जमींदार या लीडर बन बैठे हैं। अखबारों की बिक्री बढ़ गई है—रोज साइकिल से हॉकर अखबार बाँट जाता है। फिर हर दूकान पर किसी-न-किसी पार्टी का अड्डा जम जाता है—दिन भर लीडरी और रात में भट्ठी में शराब की पिआई। अब बकरे रोज कटते हैं—एतवार-मंगल का कोई परहेज नहीं और कलिया की बिक्री इतनी बढ़ गई है कि हड्डी तक नहीं बचती। गाँव बरबाद हो गया और शोहदों की बन आई। रात में पहरा देनेवाले पुलिस के सिपाही करीमन के घर में जाकर सोते हैं—उसकी दो-दो बेटियाँ जो जवान हो गई हैं। आपके पिता के जमाने में गढ़ पर सलामी बजाकर ये सिपाही थाने की ओर चल देते थे। आपके पिता के चलते कभी यहाँ थाना न खुलने पाया—कोई जरूरत ही न थी। अब तो सब खुल गया—ब्लॉक ऑफिस से लेकर वेश्यालय तक।'—पाठक जी ने नाक-भौं चढ़ा लिया। अन्दर बैठे सभी खिलखिला पड़े।

पाठक जी की भौहें और तन आईं—'आप हँस रहे हैं ? गाँव की तो जरा भी फिक्र नहीं। जनाब, ये भी छोटे-मोटे नेता ही हैं—नेता। अब आप यहाँ आ गए—कल से इनका तमाशा देखें।'

'पाठक जी, यही तमाशा देखते-देखते तो मैं इतनी दूर से बसन्तपुर चला आया।'—वह फिर मुस्कुराने लगा।

जीप बाजार से निकल कर राज पोखरा की ओर बढ़ी। अब अँधियारी काफी बढ़ आई।

सड़क पर बिजली की बत्तियाँ जल उठीं तो उसने टोका—'पाठक जी, गाँव तो अब काफी तरक्की कर गया—बिजली की बत्तियाँ जगमगाने लगीं—नहीं तो पहले बरसात की रात कयामत की रात होती।'

'इसमें क्या शक ! सरकार की तरफ से बत्तियाँ सड़कों पर लगी हैं पर इनका टैक्स देने को कोई तैयार नहीं। सभी इस पैंतरे में हैं कि पंचायत के चुनाव के बाद जो मुखिया होगा वह दे या बी० डी० ओ०। मुखिया या बी० डी० ओ० तो अपने घर से देंगे नहीं, इसलिए जितने दिन बिजली जल रही है, जल रही है ; फिर तो वही अँधियारी की अँधियारी। और आज भी बस महाजनों के घरों में या बाजार में इर्दगिर्द बिजली की बत्ती जलती आप देख लें नहीं तो सारा गाँव अँधेरा घुप्प पड़ा है। किसके पास पैसे हैं कि 'कनेक्शन' ले और बिजली का चार्ज दे ? राज जाने के बाद तो गरीबी और भी बढ़ गई। मजूरों की यह बस्ती ठहरी या बनिया-महाजनों की। एक के पास पैसे नहीं, दूसरा पैसा खरचने से भागता है। और, रात ? वह तो आज भी कयामत की ही होती है। कोई रात नहीं बीतती जब किसी के यहाँ सेंध न फूटे। पेट जलता है तो कोई क्या करे ! पुलिस का पहरा पड़ता रहता है और चोरियाँ बढ़ती जाती हैं। थाने-चौकी का भी कोई असर नहीं।'

राज ठाकुरबाड़ी से संध्या-आरती की घंटा-ध्वनि गूँज रही है। उसकी

दृष्टि मन्दिर की ओर जाती है। पुरानी रौनक अब रही नहीं। बस, यों ही एक नेम निभता जा रहा है।

सदर दरवाजा पार कर फिर जीप गढ़ के विशाल आहाते के अन्दर घुस आती है। वह देखता है—आहाते की दीवारें गिर रही हैं—कहीं-कहीं ईंटें खिसका कर लोगों ने 'हेलान' कर दिया है, कहीं से पत्थर और कहीं से ईंट गायब कर दिये हैं। गढ़ की दीवरों पर काई जम गई है—कहीं-कहीं पेड़-पौधे भी उग आए हैं। जान पड़ता है कि किसी दिन का जगमगाता गुलजार गढ़ आज एक वीरान मकबरा बनकर खड़ा है। यदि सरकारी ऑफिस होने के कारण वहाँ बिजली बत्तियों का पूरा इंतजाम न होता तो उसे भूत का खँड़हर मानकर उस राह कोई रात में जाने की हिम्मत न करता। यह अच्छा रहा कि उसे सरकारी दफ्तर बनवाकर उसके पिता ने उस खानदानी इमारत को भुतहा खँड़हर बनने से बचा लिया।

गढ़ के सामनेवाला हिस्सा बेमरम्मत नहीं था। सरकारी हिस्सा होने के कारण उसे रामरज से रँग कर साफ-सुथरा रखा गया था। चौखट-किवाड़ भी हरे रंग से हाल ही के पुते जान पड़ते थे।

जीप से उतरते ही उसने देखा कि बिलट्ट झुक कर सलाम कर रहा है।

'अरे बिलट्ट! तुम अभी जिन्दा हो?'

'हाँ सरकार, जिन्दा हूँ—बस, आपकी सेवा एक वार फिर कर लेने को जिन्दा हूँ।'—उसकी आँखें डबडबा आईं।

उसने बिलट्ट के दोनों हाथ पकड़ लिये—'बिलट्ट! तुम अभी भी जीवित होंगे, इसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी।'

'क्या करें मालिक, जब बड़का मालिक गाँव छोड़ चले गए तो मैं बेसहारा हो गया। दाने-दाने का मोहताज। बाल-बच्चे भूखों मरने लगे तो जी कड़ा कर बी० डी० ओ० साहब का नौकर बनकर किसी तरह गुजर-बसर करने लगा। इस हवेली में फिर आकर किसी दूसरे मालिक की नौकरी करने की इच्छा न होते हुए भी पेट ने, बाल-बच्चों ने मजबूर कर दिया।'—उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

वह उसका हाथ पकड़े कुछ खोई-खोई दृष्टि से उसके मुख पर उभरते भावों के अतिरेक को देख रहा है।

कि रामजतन बाबू ने टोका—'हुजूर, रहने का इंतजाम ऊपर है।'

'अच्छा, तो ठीक है—ऊपर ही सामान ले चलिये।'

रामजतन बाबू ने सामान ऊपर कटहरे पर रखवा दिया। पुराने साहब ऊपर ही इसी हिस्से में रहते थे। नये साहब को भी मंजिल तक पहुँचा कर पाठकजी, बेनीमाधव, बिहारी, सूरज और रामजतन बाबू कुछ देर बाद अपने-अपने घरों को चल दिए। बस, अकेले ऊपर कटहरे पर वह तकिये के सहारे अपने पलंग पर बैठा रहा और उसके पैर टीपता रहा बिलटू।

नीचे बन्दूक का पहरा पड़ रहा है। सामने राज कचहरी के मैदान में, जहाँ किसी जमाने हर दशहरे के दिन तौजी होती थी, एक ऊँचे पोस्ट पर गड़ा राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहरा रहा है। जहाँ उसके पिता का दफ्तर था, वहाँ अब सरकारी खजाना है और उसकी निगरानी में संगीन बन्दूक लिये एक पहरेदार मूरत की तरह खड़ा है।

'बाबू, खाना बना कर साँझ से ही रख दिया है। दालभरी पूरी, सब्जी और खीर। अब तो रास्ते की थकान दूर हो गई होगी—कुछ खा लें।'

'वाह बिलट्टू, तुमने तो मेरे मन लायक खाना बना दिया है।'

'हाँ मालिक, मैं तो आपको बचपन से ही जानता हूँ कि आप क्या खाते रहे हैं। माता जी का हुक्म था कि बबुआ को जो पसन्द होगा, वही खाना रोज बना करेगा, मगर बड़े मालिक बिगड़ते—तुम बच्चे की आदत खराब कर रही हो—सब चीज खिलाने की आदत डालो।'

बूढ़े मालिक को याद कर बिलट्टू एक बार फिर आँसू बहाने लगा—'बड़े अच्छे मालिक रहे हमारे—इतने दयावान, दानी। ओह ! आज भी गाँव की प्रजा उनका नाम लेकर रोती है। सब तो समझते थे कि अपना राज मिलेगा और यहाँ मिला ठेंगा ! जमींदारी जाने का शोक वह सह न सके। असमय ही उठ गए।'

'छोड़ो उन बातों को बिलट्टू—बीती ताहि बिसारिये, आगे की सुधि लेय। और हाँ, खाना तो मैंने रास्ते में ही खा लिया, अब कुछ खाने को जी नहीं—रख दो, इच्छा होगी तो कुछ देर बाद........'

वह फिर अपने आप में खो गया।

'बिलट्टू, राजपोखरा और मन्दिर की हालत अच्छी नहीं दिखी आज। सब बेमरम्मत नजर आ रहा है।'

'बाबू, राज ही चला गया तो कौन देखे ? मन्दिर और पोखरा बड़े मालिक ने अपने नाम से रख लिये थे, सरकार ने तो उन्हें लिया नहीं। अब उनकी मरम्मत का भार तो आप पर है। बड़े मालिक तो रहे नहीं—इतने पैसे अब कहाँ से आयें........'

'यही तो कह रहा हूँ बिलट्टू, कि दोनों की हालत आज बहुत खराब है। पिताजी यह सब भी सरकार को ही दे देते तो अच्छा ही रहता।'

'बाबू, क्या क्या देते बड़े मालिक ? यह गढ़ और कचहरी तो मजबूरन ही दिये। जहाँ-जहाँ कागज-पत्तर था, सभी जगह कलक्टर साहब ने अपना ताला लगा दिया। फिर चारा क्या था ? मालिक कहते कि कानूनन अब उसीका हो गया—दे दिया उन्होंने। आज भी गढ़ का पीछे का हिस्सा आपका ही है—मालिक ने किराये पर उठा दिया—जब सब बेपरद हो गया तो क्या करते—सब छोड़-छाड़ कर, नास कर चले गए।'

आज श्रावणी पूर्णिमा है। सालभर जिस दिन का इन्तजार यह अंचल करता वह दिन आखिर आ ही गया। सबकी नस-नस में बिजली कौंध जाती। सावन की वह रात कभी भी न भूलेगी। राजमन्दिर के विशाल कक्ष में राधा-माधव की मूर्त्ति के सामने महफिल जमी हुई है। बनारस से चम्पा बाई, हीरा बाई। कलकत्ते से बड़ी मैना, छोटी मैना। गाजीपुर से हमीदा और बुलाकन। पक्का गाना, गजल, ठुमरी, कजरी आदि की इन विख्यात गायिकाओं की भीड़ में एक नई गायिका मेहरुन्निसा भी इस साल शामिल है। बनारस के समीप के किसी गाँव से आई है। मन्दिर के बरामदे के बाहर शामियाना लगा है। बरामदे तथा शामियाने में तिल रखने की भी जगह नहीं है।

इस इलाके में प्रसिद्ध है कि ये मशहूर गायिकाएँ सावन भर राव साहब के मन्दिर में झूलन-समारोह में नाचती-गाती हैं। इस समारोह में राव वीरेन्द्र सिंह भी अपने दरबारियों के साथ शरीक होते! राधा-माधव की मूर्त्ति के सामने ही उनकी गद्दी लगती। दायें-बायें बिरादरी तथा दरबारी लोग और सामने फर्श पर गायिकाओं का जमाव।

रात भर समारोह चलता और भोर होते-होते भैरवी गवा कर तो मजलिस टूटती। दस-दस कोस से लोग झूलन में आते और इस समारोह का सारा खर्च रावसाहब अपने खजाने से देते। इस झूलन की खसूसियत थी कि हिन्दू और मुसलमान सभी इसमें शामिल होते और राधा-माधव की मूर्ति के सामने रीझते।

'क्यों शेख साहब ! अब क्या सुनने का इरादा है ?' —रावसाहब ने शेखसाहब की ओर मुखातिब होकर कहा। उनकी कलँगी का हीरा किटसन लाइट में चमक उठा और वे मुस्कुराने लगे।

'हुजूर, बड़ी मैना से वही—पूरब से आवेला काली बदरिया सैयाँ.....।'

'वाह ! वाह ! खूब फरमाया। इंसा अल्ला ! यह उम्र और यह फरमाइश !' —सारी महफिल हँस पड़ी।

शेखसाहब झेंप गए। उनकी सुफैद खसखसी दाढ़ी भी हिल गई।

वीरमणि पाठक के पिता पं० रासबिहारी पाठक ने झट टोका—'सरकार बहादुर ! शेखसाहब की फरमाइश पर मुझे कुछ आपत्ति है।'

रावसाहब की भौंहें तन गईं—'पाठकजी, कहिये, आपको क्या कहना है ?'

'राधा-माधव की मूर्ति के सामने यह सैयाँ-सैयाँ क्या ? कुछ भजन हो।'

'पंडतजी ! यह दुमानिया है.....' शेखसाहब ने तमक कर कहा।

'माफ करें शेखसाहब, आज दुमानिया नहीं—एकमानिया ही हो'—पंडितजी ने भी रुख बदला—'जरा बुजुर्गी का भी तो ख्याल करें !'

रावसाहब ने देखा कि बात का बतंगड़ हो रहा है। उन्होंने झट

सँभाला—"मल्लिकजी, बड़ी मैना से कहें कि 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' शुरू करे।"

महफिल सरकार की फरमाइश सुनकर सहम गई। किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। बड़ी मैना ने अपने समाजियों के साथ तान लेना शुरू कर दिया। सबने गिरिधर गोपाल के सामने सर झुका लिया। कानों में सुरीले गले की माधुरी और हृदय में राधा-माधव की भाव-भीनी भक्ति। सोने में सुहागा!

बड़ी मैना के बाद छोटी मैना ने पैरों में घुँघरू बाँध राधा-माधव की मूर्ति के सामने नाच-गाकर सबको बाग-बाग कर दिया। उसके बाद चम्पा बाई की बारी आई, फिर हीरा बाई की। हर एक ने अपने-अपने करिश्मे दिखाए। कोई उन्नीस तो कोई बीस।

महफिल कुछ अलसाई तो मल्लिकजी ने पाठकजी के कान में फुसफुसाकर कहा—'बनारस के पास से एक मेहरुन्निसा भी आई है। यदि रावसाहब का हुक्म हो तो उसे भी पेश किया जाय। जाने कब से इंतजार कर रही है।'

पाठकजी ने मुस्कुरा कर रावसाहब की ओर देखा। रावसाहब मुखातिब हुए—'क्यों, क्या बात है?'

'मल्लिकजी को कुछ कहना है...'

'हाँ-हाँ, सहमिए नहीं, कहिए।'

'सरकार, समैया का नाम सुनकर एक मेहरुन्निसा गायिका भी आई है। अभी नई है। हुक्म हो तो पेश हो।'

'जरूर !'

'तो अभी हाजिर करता हूँ। तैयार बैठी है।'

वह सामने आती है। सारी महफिल की नजर एकबारगी उसी ओर मुड़ जाती है। उसके नाज-अंदाज पर सभी गुम हैं मगर महफिल का अनुशासन इतना कड़ा है कि कोई खाँसता तक नहीं। मालिक का इशारा मिले बिना क्या मजाल कि कोई आँख भी उधर टिकाए ! सिर्फ मुंशी टेनी लाल ने कहा—'मल्लिकजी, फर्राश से कहें कि किटसन लाइट में हवा भर दे। सभी की रोशनियाँ कम हो रही हैं।'

'हाँ-हाँ'—रावसाहब ने कहा और पलक मारते रोशनी दूनी हो उठी। और उसी के साथ-साथ मेहरुन्निसा का अपरूप रूप भी मुखर उठा। मेहरुन्निसा ने मूर्ति को प्रणाम कर रावसाहब को सलाम किया और फरमाइश के लिए मुंतजिर बैठ गई।

'मल्लिकजी, मेहरुन्निसा से कहिए कि कोई ऐसी चीज सुनाए कि महफिल फिर झूम उठे। काफी रात बीत चुकी है और लोग-बाग कुछ अलसा-से गए हैं।'

'ऐसा ही होगा हुजूर !'

मल्लिकजी ने सारंगी वाले से तथा मेहर से कानाफूसी की और फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गए।

मेहर अभी कमसिन है। लोग समझ रहे हैं कि वह अपनी सूरत के बल पर ही जग जीत जाएगी—हुनर उसमें है या नहीं, सबको शक है। मगर वाह रे मेहरुन्निसा ! भगवान ने उसे जैसी सूरत दी थी, वैसी सीरत भी। वह तो कला की कली निकली।

एक ही आलाप में क्या कला के पारखी और क्या रूप के कद्रदाँ—सभी पामाल हो गए। रावसाहब तो मंत्र-मुग्ध थे। उन्हें सुर और आलाप का पूरा ज्ञान था। उन्होंने झुककर मल्लिकजी से पूछा—'यह उम्र और यह रेयाज ? कमाल है ! कहाँ ठहरी है ? और सब के साथ ?'

'नहीं हुजूर, पोखरा किनारे इसका खेमा गिरा है।'

रावसाहब खो गए। उनके साथ-साथ सारी महफिल भी खो गई। राधा-कृष्ण की लावण्य-लीला, उनके जीवन की विविध भंगिमा उस रात साकार हो उठी। यह किसी को पता ही न चला कि मेहर के गले की खूबी रही या राधा-माधव की झाँकी का पुण्य-प्रताप कि सभी सुधबुध खो आत्मविभोर होकर धन्य-धन्य हो गए।

बिसरती रात महफिल जाकर टूटी। रावसाहब मूर्ति के सामने सर नवाकर चलने को हुए तो सुहागी नाई ने मशाल दिखाते हुए उन्हें बाहर जोड़ी तक पहुँचाया। साथ-साथ सभी दरबारी भी चले।

मन्दिर-द्वार पर एक औघड़ ठठाकर हँस पड़ा। गले में खोपड़ियों की माला, अजीब डरावना चेहरा, खून से लथपथ हाथ। कोई कुछ न बोला। रावसाहब की जोड़ी गढ़ की ओर बढ़ चली।

घुप्प अँधेरी रात। देखते-ही-देखते सारी भीड़ जाने किधर खो गई।

मेहर अपने चाचा आलम के साथ खेमे में आ गई।

माँ ने पूछा—'बहुत थक तो नहीं गई ?'

'नहीं माँ, आज मैं बहुत खुश हूँ। बेहद।' वह चारपाई पर सारा साज पहने लेट गई और तम्बू की छत निहारने लगी।—'माँ, मेरी बारी बहुत बाद में आई, मगर खुदा का शुक्र, आज मेरा गाना कुछ ऐसा जमा

कि सभी झूम उठे। रावसाहब भी पक्का गाना की पूरी पहिचान रखते हैं। बराबर मस्ती में खोये रहे। बड़ी मैना और छोटी मैना तो कट के रह गईं। उन्हें बड़ा नाज था अपने पर। आज सारा गरूर चूर हो गया। अम्माँ, वे सब अब क्या गाएँगी—सिर्फ नाम की रोटी खा रही हैं।'

'अरे चुप रह! अपने मुँह अपनी तारीफ न कर। आज मैदान क्या मार आई कि सभी को इक्के-दुक्के समझ बैठी। उठो, कुछ खा लो। थक गई होगी।'

'नहीं माँ, अब तो भोर होने को है। अब नहीं खाऊँगी। थोड़ी देर सो लूँ, फिर हाथ-मुँह धोकर....और हाँ, चलते-चलते मल्लिकजी ने कहा कि इस साल समैया में मेरा नाम भी दर्ज हो गया है। वह चाचा से कहने लगे कि कहीं ठहरने का पक्का प्रबन्ध कर लें। बरसात के दिन में भला खेमे में रहना!'

'यह तो बड़ी अच्छी बात है! खुदा का शुक्र है। मियाँ को आज भेजूँगा, गाँव में कोई जगह तलाश करें।'

'हा-हा-हा-हा....हा-हा-हा-हा!' एक भयावना अट्टहास। एक अजीब चीत्कार—फुत्कार।

दोनों सहम जाती हैं। चाचा जान भी जाग पड़ते हैं।

'कौन ? कौन ?'

'हा-हा-हा-हा !'

'कौन हो तुम ?'

'हा-हा-हा-हा''''!'—अट्टहास और भी भयावना होता गया ।

सहम कर माँ-बेटी एक दूसरे से चिपक जाती हैं।

चाचा बाहर निकलते हैं।

'हा-हा-हा-हा-हा-हा !'

'अरे तुम ? यहाँ क्या कर रहे हो ? बाहर जाओ—बाहर। अभी सोने दो। फिर आना।'

चाचा अन्दर चले आए।

'घबड़ाओ मत, वही औघड़ है जो शाम से ही खेमे का कई बार चक्कर लगा गया। कहता था—'मेहर से मिला दो—बस, एक बार !' मैंने टाल दिया था। इस समय बड़ी भयावनी सूरत बनाकर आया है। आँखें लाल सुर्ख हैं—खोपड़ियों और हड्डियों की माला पहन कर आया है। उफ !!'

'हा-हा-हा-हा !'

'या खुदा ! अब क्या करूँ ? यह तो यों जाएगा भी नहीं—दुत्कारूँ भी तो कैसे ? औघड़ है—जाने क्या बोल दे !' —मेहर की माँ ने सहमते हुए कहा ।

'हा-हा-हा-हा !' —वह हठात् अन्दर घुस आता है । फिर वही—हा-हा-हा-हा !

उसका भयानक बीभत्स रूप देखकर मेहर माँ से चिपक कर चीख उठती है और वह औघड़ चिल्ला पड़ता है—हा-हा-हा-हा ! नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा ! दुधवा पिला, दुधवा पिला, छाती खोल ! हा-हा-हा-हा ! दुधवा पिला—पिला दुधवा, छाती खोल—खोल छाती !'

'बाबा ! यह अभी कमसिन-कुँवारी है, कोई बच्चा नहीं हुआ है—दूध कहाँ इसकी छाती में ? अब माफ कर दें । रोटी-गोश्त रखा है—गाय का दूध भी गर्म है, आप ले लें........'

'हा-हा-हा-हा-हा-हा-हा-हा ! नहीं-नहीं-नहीं ! छाती खोल, दुधवा पिला, दुधवा पिला । नहीं जाऊँगा—नहीं जाऊँगा । दुधवा—दु....ध.... वा....पि....ला.... ।'

माँ और औघड़ में काफी देर तक रकझक चली । वह भी अड़ी हुई है और यह भी अड़ा हुआ है । चाचा जान बुत खड़े हैं । औघड़ से कोई क्या बोले ! कुछ शाप दे दे तो ! हिन्दू और मुसलमान सभी उससे डरते हैं ।

फिर अम्मीजान ने बेटी की छाती खोल दी । बेटी तो भय और शर्म से

अधमरी हो गई। औघड़ ने दोनों स्तनों को खूब चूस-चूस कर भर पेट दूध पी लिया—इतना दूध उतरा कि मेहर की कुरती तक भींग गई। जब उसकी क्षुधा शांत हो गई तो उसने चिल्ला-चिल्ला कर दुआ देना शुरू कर दिया—'जा, मेरी मेहर ! रानी, नहीं, पटरानी हो जाएगी, पटरानी···· जा····जा····हा····हा····हा····हा····पटरानी ! हा—हा—हा—हा !'

तारे डूबते-डूबते वह गाँव से निकल गया—जा····जा····रानी, नहीं, पटरानी····रानी नहीं, पटरानी····हा····हा····हा····जा····जा····जा···· ।

भोर में दिशा-फराकत होनेवाले लोग उसे पागल समझ रहे हैं—वह लोगों को पागल समझ रहा है········हा-हा-हा-हा····जा····जा····रानी···· नहीं····पटरानी !

नरेन्द्र तकिया छोड़ झट उठ बैठा—'बिलटू ! तुम्हें याद है—क्या सचमुच उसकी छाती से दूध बह चला था ?'

'हाँ-हाँ मालिक, सचमुच ! मैंने तो औघड़ को चिल्लाते अपने कान से सुना था। नहर के पुल पर हमारी मंडली दिशा-फराकत कर बैठी रही तो वह हा-हा-हा-हा करता जाता रहा।'

फिर उस रात नरेन्द्र की नींद आती-जाती रही—सोता-जागता रहा वह। बिलटू की नींद खुलती तो पैर टीपने लगता नहीं तो फों-फों-फों की आवाज !

दूसरे दिन मे नरेन्द्र से मिलनेवालों का ताँता बँध गया। कुछ साल पहले जिसके पिता बसन्तपुर रियासत के अधीश्वर रह चुके थे, उन्हीं के पुत्र ने इस अंचल का भार एक सरकारी अफसर के रूप में सँभाला है। पुराने सम्बन्ध तो इस इलाके से थे ही, फिर लोग आने से क्यों चूकते और खासकर जब वह बी० डी० ओ० बनकर आया है! कुछ लोग डरते भी थे कि कहीं वही पुराने रावसाहब फिर न नए रूप में उपस्थित हो गए हों; मगर जिससे भी वह मिलता, उससे वह साफ कहता जाता—'भाई, जमींदारी तो कबकी चली गई। यदि पिता का देहान्त न हुआ होता और मेरा परिवार आर्थिक संकट में पड़ न गया होता तो मैं सरकार से यह 'फेवर' कभी भी नहीं माँगता। बस, क़िस्मत की बात रही कि मैं इस रूप में फिर आपका.......मगर पुरानी बातों को सब भूल जाएँ। अब न वह जमीन है और न वह आसमान। मुझसे कोई कुछ नाजायज माँगे नहीं क्योंकि मेरे पास वह रियासती खजाना नहीं और न कोई डरे क्योंकि मैं न अब इस गाँव का मालिक हूँ न जमींदार।'

मगर वीरमणि पाठक के दालान में अटकलबाजी लग रही है। घुरफेंकन खैनी को अपने होंठों तले दबाते हुए कह बैठता है—'पाठकजी, जमाना फिर पलटेगा क्या? पुराना जमींदार फिर कुर्सी पर आकर बैठ गया है। अब खैर नहीं, गई जमींदारी लौट आई। कहते थे न—बड़का बड़का ही है। अब ले फेंकू, मजा मार। बड़ा कूदता रहा। जिस दिन रावसाहब इस गाँव से गए, तूने बहुत मिठाई बाँटी थी। कहता रहा—हमारा सब खेत इन्होंने छीन लिया था। अब तो सब मिठाई बाँटना बेकार हुआ।' उसने थूक पच-से बाहर जाकर फेंका।

फेंकू ने चिढ़ कर कहा—'चुप रहो—चुप! पुरानी बातें दुहराने का यही समय है? तुम तो गड़ा मुर्दा उखाड़ रहे हो।'

पाठकजी हँस पड़े—'यह गाँव बेवकूफों का जमघट बन गया है। इन उल्लुओं को नहीं समझ में आ रहा है कि कभी कानून भी बदलता है। हूँ, हूँ, भला गई हुई जमींदारी कभी लौट आएगी—और वह भी घुरफेंकन के मनावन करने से! जमींदार के लड़कों के लिए कुछ कोटा तय था, उसी में से यह छोकरा सरकारी नौकरी पा गया और आज बी० डी० ओ० बन यहाँ चला आया। इसमें जमींदारी लौट आने की बात कहाँ से आ गई? हूँ, हूँ!'

वीरमणि पाठक अपनी पाठपुस्तिका लिये पूजा की चौकी पर बैठ गये और ध्यान लगाने की कोशिश करने लगे।

'बस, बस, बस! यही तो हम कहते रहे कि महराजजी, आपने तो दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। यह घुरफेंकन को बुझाय तब तो?' फेंकू के सर्द चेहरे पर रौनक दौड़ गई।

मगर घुरफेंकन को इतमीनान न हुआ—'देखो फेंकू, देखो, आगे क्या होता है !'

पाठकजी आँख बन्द किये मुस्कुरा उठे—'इडियट, फूल !'

'फूल-फल का सवाल नहीं है पाठकजी ! बात यह है कि जमींदार के पुराने दलालों की अब तो बन ही आएगी। उनकी दाल गलेगी कि आपकी ? वे आज सुबह से ही गढ़ में जुटने लगे हैं। मुंशी टेनी लाल, राजपति राय, मंगर पाँड़े····आदि।'—गोधन ने पान कचरते हुए कहा। वह आज साहजी की मंडली से छटक कर पाठकजी के दालान में बैठ गया है।

घुरफेंकन को लगा कि फिर बाजी उसकी झोली में आ रही है।

पाठकजी का ध्यान भंग हुआ—

'गोधन ! तुमलोगों का दिमाग खराब हो गया है ! यह कांग्रेसी राज है और मैं कांग्रेसमैन हूँ—मैं सरकार की अन्दरूनी हालत जानता हूँ। जमींदार का बेटा हुआ तो क्या हुआ ? वह तो बी० डी० ओ० है—हमारा नौकर। जो हम कहेंगे, उसे करना ही होगा, नहीं तो यहाँ से भागना होगा।'—पाठकजी ने हुमच कर इतनी बातें कह डालीं और फिर ध्यानमग्न हो गए।

गोधन साह गम्भीर हो गए—'ठीक है, मगर देखिए अभी·····'

उधर नबी मियाँ की दूकान पर भीड़ लगी है। चन्द 'कामुनिस्ट' लेकचर पिला रहे हैं—'देखा कांग्रेसी सरकार का अन्धेर ? एक जमींदार के बेटे को बी० डी० ओ० बनाकर भेज दिया। यह अपनी जमींदारी सँभालेगा या सरकारी नौकरी ? आज दर्जनों तार मुख्य मंत्री के यहाँ भेजना है, इसका तबादला कराकर ही छोड़ना है। गाँव के लोगों से दस्तखत लेकर

एक अर्जी दिल्ली भी जानी चाहिए। वीरमणि पाठक की तो अब बन आएगी। पाठक का बाप राव वीरेन्द्र सिंह का दरबारी था। पुराना रिश्ता—अब दोनों की खूब बनेगी।'

राहगीर भी खड़े हैं और खरीदार भी—और कामरेड नबी का लेक्चर एक सुर से जारी है।

उधर सोहन साह की दूकान में साहजी लोगों की मण्डली बैठी है। सभी बड़े खुश दीख रहे हैं। सोहन साह लीडरी के लहजे में बोल रहे हैं—

'भाइयो! मजा आ गया। राव नरेन्द्र सिंह क्या आए, हमलोगों का बीता हुआ जमाना लौट आया। पिछले बी० डी० ओ० के जमाने में गाँव का गेहूँ का कोटा कट गया था—केवल किरासन तेल का कोटा बच गया था। अब हम गेहूँ का कोटा लौटा लेंगे। गाँव में राशन खूब बँटेगा। अपने मालिक जो गद्दी पर आकर बैठ गए हैं। हाथ पकड़कर ऑर्डर करा लेंगे। इनके बाप से, महाजन टोली का पुराना रिश्ता रहा है खूब!'

'साले पुराने बी० डी० ओ० ने तबाह कर दिया था। 'बिलाक' का पैसा जो आता उसमें वह और बड़ा बाबू अपना आधा-आधा हिस्सा ले लेते। जोखिम कौन उठाए और मजा कौन मारे! साले की बदली कराने को दर्जनों तार यहाँ से भिजवाए थे मैंने। भगवान जान बचाए उससे! शैतान की औलाद था। और यह रामजतना हरामजादा! अभी भी बड़ा बाबू बना बैठा है। इसको तो यहाँ से निकलवाना जरूरी है। हमलोगों से पैसा खाते-खाते तोंद फुला लिया है'—इन सारी बातों को बड़ी कटुता के स्वर में रामचन्द्र साह ने कहा।

बूढ़े देनी साह ने जाने कितने पतझड़ और बसन्त देखे हैं। कान में इत्र का फाहा रखते हुए उन्होंने कहा—'मगर एक बात का ख्याल रखना भाइयो ! रावसाहब यहाँ के मालिक रह चुके हैं। घर-घर से लोग उनके पास शिकवा-शिकायत लेकर पहुँचेंगे। इसलिए इसका भी जरा ख्याल रखना। गफलत में न पड़ना।'

सबने एक साथ सर हिलाया—'हाँ, यह बात तो ठीक है।'

बड़का पोखरा पर कुछ लोग दाढ़ी बनवा रहे हैं। विश्वनाथ नाई का हाथ बड़ा साफ है। उस्तरे को बड़े मुलायम ढंग से चलाता है। बीच-बीच में वह छेदीलाल से पूछ ही बैठता है—'क्यों चाचा ! नए बी० डी० ओ० के राज में कुछ न्याय होगा ? पुरनका तो एक सेर चावल तक घूस लेता था। बड़ी धाँधली मचा रखी थी। अब कुछ सुधार होगा ?'

'कुछ नहीं—ऊँ हूँ....'—उस्तरे की चाल पैनी हो इसलिए चाचा ने गाल फुला कर बात बन्द कर दी।

जब उस गाल के बाल साफ हो गए तो उन्होंने हँसते हुए कहा—'विश्वनाथ, सभी एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं।'

'मगर यह तो बड़े आदमी का बेटा....'

'तो इससे क्या हुआ ? अभाव में पड़कर सभी चोर बन जाते हैं। इसके पास पैसा रहता तो नौकरी करता ? दादा ने शाहखर्ची में धन लुटा दिया और बाप बड़ी हवेली की डूबती इज्जत सँभालने में बिक गया। यह तो कहीं का न रहा। सरकारी नौकरी पकड़ कर अपने को बचा पाया। देखना, फिर कोटा के माल छूट कर 'ब्लैक' में बिकेंगे।'

डोमन मुसहर बगल में ही बैठा सारी बातें सुन रहा था। बोला—'ठीक कह तार ऽ चाचा! हम गरीबका के उहे हाल रही। राम-राम! सोहन साह के अब दूसर अटारी उठत बा। रात-दिन ओकरे में खटत बानीं त पेट भरत बा।'

गाँव के चाचा छेदी लाल मूँछ के बाल छँटवा कर अब छाती के बाल छँटवाने लगे।

बसन्तपुर मुख्यतः मजदूरों या बनियों की बस्ती है। दोनों की रोजी-रोटी राव वीरेन्द्र सिंह तथा उनके बेटे राव जीतेन्द्र सिंह की जमींदारी के सहारे चलती रही। जबसे रियासत सरकार ने ले ली, दोनों कौम को बड़ा धक्का लगा। लाखों की जमींदारी, सौ से ऊपर ही अमले-फैले और फिर उतने ही हाली-मुहाली। सभी वहीं बसते और उन्हीं के आश्रय में बनिया और मजदूर जीते-खाते रहते।

मगर अब तो सारी आमदनी का सोत ही सूख गया। दस-बीस घर ब्राह्मण, पाँच-सात घर लाला, दो-चार घर ठाकुर—वे भी रियासती माल ही चाभकर मोटे बने रहे। अब जब उनकी ही पिलही चमक गई तो भूखों के इस गिरोह को वे कहाँ से देते-लेते!

सोहन साह अपनी कपड़े की दूकान जमींदार के जमाने में नित नए-नए कपड़े—फैंसी धोती और साड़ी, चिकन और मलमल के थान तथा छापे के नये-नये डिजाइन से भरते रहते, उधर राधा साह अपनी पारचून की दूकान में इस्टेट के पुर्जे के माल जुटाने में ही व्यस्त रहते। फिर जिस किसी अमले की जेब

नाजायज पैसे से भरती, वह देनी साह की दूकान से इत्र और मगही पान खरीद कर दुलारी के कोठे पर पहुँच मुजरा सुनता। रामचन्द्र साह हलवाई की दूकान तो सुबह-सुबह गर्म-गर्म जलेबियाँ और शाम की शाम छेना की मुरकी जुटाते-जुटाते ही परीशान रहती। जमींदार साहब से कम शौकीन उनके अमले नहीं थे और जो चीजें बाजार से हवेली में चली जातीं उनका मार्केट अमलों के घरों में भी सुरक्षित हो जाता। और, दरबार की बढ़ती अमलदारी के साये में फलते-फूलते इन अमलों की ताबेदारी के लिए मजदूरों और नौकरों का एक काफी बड़ा काफिला भी इस हुजूम के इर्द-गिर्द बराबर मँडराता ही रहता।

मगर राव जीतेन्द्र सिंह के गाँव से कूच करते ही सारा समाँ ही बदल गया। अब न सोहन साह की दूकान के माल की खपत होती न देनी साह के इत्र और मगही पान की ही। गाँव का 'टेस्ट' ही बदल गया और रामचन्द्र हलवाई के यहाँ अब खजुली और लकठो बिकने लगा। जमींदारी जाते ही वे सब शौकीन लोग रोजी-रोटी की तलाश में शहर भाग गए और बस बच रही उस गाँव में भूखों और बेरोजगारों की एक विशाल जमात।

सोहन साह लदनी करने लगे। एक टट्टू रख लिया और उस पर माल लाद कर गाँव-गाँव घूमने लगे। वह तो अभी पचास के नीचे ही थे इसलिए इतनी मिहनत उनसे पार लग जाती मगर देनी साह तो सत्तर के पड़ोस में पहुँच कर दम तोड़ने लगे। भूखों की इस जमात में इत्र और पान-सुरती के कद्रदाँ अब कहाँ मिलते!

राधा साह कलकत्ते से नफीस चीज मँगाना छोड़ अब चोटी और कंघी, साबुन और आईना, टिकुली और इंगुर पर ही गुजर-बसर करने लगे।

जमींदारी क्या गई इन बनियों की कमर ही टूट गई। मगही पान और बनारसी पत्ती जर्दा खानेवाले ये बनिया-महाजन अब खैनी पर उतर आए। इनका मन बराबर तीता हुआ रहता। किसी तरह चैन नहीं।

एक दिन डोमन मुसहर की पत्नी ने थके-माँदे आए आँगन में खाट पर पड़े हुए अपने पति से पूछा—'आज बड़ा हारल अइसन लागत बाड़ऽ। का बात बा ?'

'कुछ ओ ना''''।'

'बा त जरूर कुछ।'

'अब खरच चलत नइखे''''।' —वह रो पड़ा। लड़कपन, जवानी और बुढ़ापा आते-आते उसने जाने कितने बागों के सूखे पेड़ों को चीर कर जलावन बनाकर घर-घर पहुँचाया। मगर अब जलावन भी कोई लेने को तैयार नहीं। दो-चार घर छोड़ सभी कोयला खरीदने लगे हैं। देनी साह के बेटे गोधन ने आखिर झख मारकर बाप से अलग होकर कोयले की दूकान खोल दी है और अब सभी घरों में कोयला जलने लगा है। जमींदारी जाने के बाद पेड़ सब सरकारी हो गए और लोग-बाग डाक बोलकर उन्हें खरीद लेते। अब जलावन के लिए सस्ती लकड़ी भी नहीं मिलती। बस, सभी कोयले पर टूट पड़े।

गाँव में कोयला पहुँचते ही डोमन जैसे मिहनतकश लकड़हारों की दो जून की रोटी भी छिन गई। पिछले दिनों किसी के आँगन में हा-छू-हा-छू

करता टाँगी से सूखी लकड़ी चीर-चार कर डोमन अंजोरिया पासिन के ओसारे में बैठकर एक लबनी ताड़ी चढ़ा लेता और टेट में पैसे ठनकाते बड़ी मस्ती में अपनी फूस की मड़ई में लौट कर अपनी पत्नी से फूहड़ मजाक करता। मगर वह सारी मस्ती ही अब जाती रही। उसकी मिहनती भुजाएँ रोज काम करने को तड़पती रहतीं मगर अब काम कहाँ ?

बुढ़िया ने धीरज बँधाया—'छिया-छिया-छिया। अइसे रोअला से काम ना चलो। बाल-बच्चा भूखे मरि जइहें। जुगुत लगा के कोई काम निकालऽ ना तो मन हरला से त........'

डोमन ने आँखें पोंछीं। मन को धीरज बँधाने का प्रयास करता मगर माने तब तो ! उसका जवान बेटा दो साल पहले हैजे का शिकार हो गया था। जवानी की पौर पर पैर रखते हुए दो पोते और एक पोती का भार उसके कंधों पर है। खेत-खलिहानों में कमाती-कमाती उसकी बुढ़िया देह से बिलकुल थक कर लुञ्ज हो गई है।

'बेटी सुखिया—ओ बेटी सुखिया !'—सूने आसमान को निहारते हुए डोमन ने अपनी पोती को पुकारा।

'का बाबा ?'

'जिगना और बलचनवाँ कहाँ लापता हैं ? दुपहर से ही........'

'मुझे नहीं मालूम।'

'देख, झूठ मत बोल।'

'सच, मैं कुछ नहीं जानती।'—वह घर में भाग जाती है।

'देखती हो जिगना की दादी ? दोनों साले भाग गए। रात-दिन लापता। हूँ-हूँ !'

'आखिर क्या करें ? पेट जलता है तो कुछ जुगुत लगाने भाग जाते हैं। आज दो दिनों से तो एक शाम ही चावल पकता है। और वह भी भर पेट नहीं।'

'ठीक है, तो चोरी करें, सेंध मारें, लुटेरे हो जायँ....।'—वह तिलमिला उठा। कुछ बोल न सका। जान पड़ा मनों बोझ उसकी छाती को दबोच रहा है। उसका दम घुट रहा है। कहीं कोई रास्ता नहीं। कोई किनारा नजर नहीं आता। वहीं चारपाई पर लेटे-लेटे करवट बदल लेता है। साँझ की अँधियारी और भी गहरी हो उठी है।

'अरे बलचनवाँ, रुक, रुक, अरे, बाबा खाट पर पड़े हैं। अन्दर न जा सार।'

'तो क्या बाहर खड़ा रहूँ ?—ओरजा लखेदे चला आ रहा है। अभी पकड़वा देगा। जमींदार और नई सरकार दोनों का पहरा पड़ रहा है पोखरा पर।'

'आज बाबा कोई नतीजा नहीं रखेंगे।'

'तो क्या भूखों मारेंगे ? चल, हट !'

मछली बहुत लम्बी थी। अभी मरी नहीं थी और उनकी छाती में सटी तड़प रही थी। अब हाथ से छूटी तब छूटी।

बस, दोनों धड़फड़ाते झोपड़ी में घुस गए। मछली हाथ से फिसलकर जमीन पर तड़पने लगी।

डोमन चारपाई छोड़ खड़ा हो गया।

'देखा न जिगना की दादी, मेरा खयाल ठीक निकला। मछली मारने ये फिर बड़का पोखरा निकल गए रहे। एकमना भाकुर मार लाए। अभी

साली तड़प ही रही है। और अब पीछे से जमींदार और नई सरकार दोनों के चपरासी दौड़ते आ रहे होंगे। जमींदारी गई मगर तालाब को लेकर झगड़ा चल रहा है। जमींदार कहता है कि तालाब हमारा ही रहा, सरकार कहती है कि जमींदारी के साथ-साथ तालाब भी हमारा हो गया। दोनों साले मरेंगे और अब हाजत में जाना पड़ेगा। तुम्हें याद है न, इसी मछली के चलते उस साल गाँव में हैजा फैला और इनका बाप उठ गया। इतना कहा मगर न माने। पोखरा में अब आँवट लग गया था। डोरी नहीं, हाथ से पकड़कर लोग-बाग मछली लेकर भाग जाते रहे। इसी तालाब की मछली ने कितने घरों को वीरान कर दिया। मगर ये साले सुनें तब तो!'

उसने एक-एक झापड़ दोनों को जड़ दिया। दोनों सर्द हो चुपचाप खड़े रहे। मछली तड़प-तड़प कर दम तोड़ती रही।

कि बुढ़िया ने चिग्घाड़ा—'छिया-छिया-छिया! बिना माँ-बाप के बच्चों पर हाथ छोड़ते लाज नहीं आती तुम्हें? छिया-छिया-छिया! मार डालो इन्हें भूखे। मरने दो—जा जिगना, जा। जा रे बलचनवाँ, छील-छाल कर पका इसे—आग पर सेंक ले। नमक साथ खा लेंगे हम। चावल कहाँ है जो पेट भरेगा! चल, इसी से दो दिन····हैजा आवे या महामारी, हम सब मरेंगे। गाँव भर मरेगा। अन्न नहीं है तो हैजे से मर जाना ही अच्छा है।'—वह बोलती रही—चिग्घाड़ती रही। डोमन खाट पर पड़ा-पड़ा सुनता रहा—बिसूरता रहा। चारा क्या था! उस रात उसने भी वही मछली खाकर क्षुधा बुझाई।

मुसहरटोली को जो क्षुधा सता रही है वही क्षुधा चमरटोली को भी तबाह किए हुए है। आज घुरफेंकन दिन भर झखता रहा—'अरी ओ सोनपतिया की माँ ! इस घर का भार अब मुझसे न चलेगा। अब बढ़िया दामी जूता पहननेवाला गाँव में कोई न रहा। मालिकजी के यहाँ जूता हमारे ही यहाँ से जाता रहा। अब तो सारा कारोबार खत्म हो गया। सभी तेल में भिगोये हुए चमरौंधे जूते की खोज करते हैं। उसमें भला क्या पैसा बचेगा ! आफत है। तुम भी रमपतिया की तरह रोपनी में जाया करो। खेत-खलिहान कमाया करो। जो भी बनि मिल जाए। मुझसे तो अब कटनी होने से रही। यों ही भूखों मर जाऊँगा।'

'मैं तुम्हारे भरोसे नहीं बैठी हूँ। आज ही रमपतिया, फुलकुँवरी और धनिया के साथ बाबूगंज रोपनी में गई थी। ओह, बड़ी दूर जाना पड़ा। पैर सूज गए। बिना बान के चलना। अबतक मालिकजी के जोरात में रोपनी होती रही तो नजदीक ही सबको जाना पड़ता मगर इस साल सारा जोरात मनी पर अहीरों को देकर शहर चले गए तो सब चमाइनें क्या करतीं—इधर-उधर बिखर गईं।'—सोनपतिया की माँ ने रोपनी में मिली घुघुनी फाँकते हुए कहा।

'ओ ! तभी तो मैं देख रहा हूँ कि आज तुम्हारे बालों में इतना तेल और सिन्दूर कहाँ से आ गया ! झाड़-झंखाड़ में यह रंग कहाँ से आया !'

'हाँ, रोपनी खत्म कर हम सब भींगती हुई मालकिन के आँगन में गईं और खूब गीत गया। फिर तेल-सिन्दूर और कुछ मीठा हमें बाँटा गया।'

'तो चलो, यह अच्छा किया। एक रास्ता तो पकड़ाया।'

'हाँ; रास्ते तो लग गई मगर कमर टूट गई। रियासत के जीरात में काम करते-करते आदत खराब हो गई है। वहाँ मनमौजी काम रहा। जब जी में आया बैठ गई, जब जितना चाहा काम किया। यहाँ तो बन्दूकी सिंह लाठी लिए एक पैर पर हमारे सिर पर खड़े रहे। क्या मजाल कि कोई रोपनी कमर भी सीधी करे! दुपहर में सत्तू मिला। हाऊ-हाऊ खेत के मेड़ पर अँगौछी में सानकर नमक-प्याज के साथ उसे खाकर भरपेट पानी पी लिया और फिर एक घुड़की बाबू साहब ने दी और सभी खेत में जुट गईं। बाप रे बाप! रमपतिया कहती कि अब आटे-दाल का भाव तुझे पता चलेगा। हम सब गाँव-गाँव दौड़कर रोपनी-सोहनी करती फिरतीं और तू भतार की कमाई पर जोमे बैठी रहती। अब मार मजा!—मैं क्या कहती! सब हँस पड़तीं और मैं करम ठोंक कर रह जाती। तुम्हारा जूते का कारबार न ठप्प पड़ता और न मैं खेत-खेत दौड़ती। सरकारी जीरात में भी तो मैं कभी-कभार ही जाती—जब रोपनिहारों की कमी हो जाती—उफ....!'

घुरफेंकन पत्नी की बात यों ही चुपचाप सुनता रहता। क्या कहता! आँखों से लहू चू रहा था, मगर करता क्या! कोई चारा न था। बसन्तपुर अब वह बसन्तपुर न रहा। न वे लोग-बाग रहे और न वे रईस और रियासत। सभी उसे ढलती उम्र की राह पर छोड़ तितर-बितर हो गए।

इस पस्ती के वातावरण में आशा की एक हलकी किरण बसन्तपुर गाँव में फूटने लगी। कांग्रेसी पं० वीरमणि पाठक ने राजधानी से लौटकर गाँव में खुशखबरी सुनाई कि नया ब्लॉक ऑफिस बसन्तपुर में ही खुलनेवाला है। वह सामुदायिक विकास योजना के मंत्री से मिलकर लौटे हैं और मंत्री महोदय ने उनकी पैरवी सुन ली है।

रात में पाठक जी के दालान में गाँव के हर जाति के लोगों की भीड़ जमी है। चूँकि सन् '४७ से काँग्रेसी राज है इसलिए पाठकजी की महत्ता अब दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

'भाइयो ! अब तुम्हें रोना नहीं है। जमींदारी जाने का सारा दुःख अब दूर हो गया। जमींदारी सिरिश्ते से भी अब बड़ा सरकारी सिरिश्ता यहाँ आनेवाला है। बी० डी० ओ० यहीं रहेगा और उसके ऑफिस में सैकड़ों व्यक्ति काम करेंगे। गाँव फिर चहचहा उठेगा। इलाके भर के लोग रात-दिन अपना काम कराने के लिए यहाँ जुटे रहेंगे। दूकानों की बिक्री बढ़ जाएगी और बेकारों को काम मिल जाएगा। रामचन्द्र साह की दूकान पर

फिर पूड़ी-जलेबी की बिक्री बढ़ जाएगी और सोहन साह की कपड़े की दूकान फिर चमक उठेगी। कितने अफसरान यहाँ ठहरने लगेंगे और गाँव की इज्जत भी फिर से बढ़ जाएगी।'

'जय हो बाबा की—जय हो महात्मा गाँधी की, जय.....' —घुरफेंकन चमार ने पाठक जी की जयजयकार मनाते हुए कहा।

'हाँ बाबा, आपने कमाल कर दिखाया। अब गाँव का सारा दुःख दूर हो जाएगा।' —सोहन साह ने संतोष की साँस लेते हुए कहा।

'कहो गोधन, बेंचो अब छूटकर कोयला। और बेनी माधव, अपना दो किता मकान मरम्मत कराकर किराया लगा दो—अच्छा किराया आ जाएगा। तुम्हारा घर ढह-ढिमला रहा था—अब बच जाएगा।'—पाठकजी ने गर्व से झूमते हुए कहा।

'हाँ बाबा, आपने हमारी डूबती नैया को मझधार से उबार लिया। रावसाहब के जाते ही हम बड़े बेआबरू हो रहे थे। सब 'बिजनेस' मन्दा हो गया था। अब देखें.....' —देनी साह ने हाँफते हुए कहा। इधर दमा के दौरे से वह बहुत परेशान रहे।

'मुझमें क्या सामर्थ्य है देनी भाई, सब भगवान् की कृपा है। बाबूगंज के ठाकुर अपने गाँव में ब्लॉक ऑफिस ले जाना चाहते रहे और रामबाग की जनता अपने यहाँ। बबुआन का कहना था कि सब एक होकर सरकार जितनी जमीन चाहेगी वे ऑफिस के लिए लिख देंगे और रामबाग वाले कहते कि यहाँ स्टेशन है, ब्लॉक ऑफिस भी यहीं खुले। मैं तो बेतरह झंझट में गिरफ्त हो गया। जब मेरी बारी आई तो मैंने भी रद्दा दिया—बसन्तपुर में मिडिल स्कूल है, अस्पताल है, डाकघर-तारघर है और है रावसाहब की

विशाल इमारत। मैं नये रावसाहब से कहकर ऑफिस तथा मुलाजिमों के लिए मकान दिलवा दूँगा। बिल्कुल शहर जैसी आफियत। सरकारी अफसरों को मेरा प्रस्ताव जँच गया और बस, बसन्तपुर चुन लिया गया। हमारी सूझ-बूझ और तुम्हारी किस्मत—दोनों ने साथ दिया और गोटी लाल हो गई। हा-हा-हा-हा !....'—पाठकजी प्रसन्न हो हँस पड़े।

'धन्य हो बाबा ! जय हो बाबा !'—सारी मजलिस फिर चिल्ला पड़ी। पाठकजी तो ऐसे फूल गए जैसे अब गुब्बारा बन उड़ पड़ेंगे, तब उड़ पड़ेंगे !

'बाबा, बनिया महाल तो बड़ा खुश है कि उनकी बिक्री बढ़ेगी तो आमदनी भी बढ़ जाएगी। उनका बेड़ा तो पार हो जाएगा मगर हम 'गरीबका' का क्या होगा ? हमारी हालत कुछ सुधरेगी बाबा ब्लॉक ऑफिस आने से ? अब तो कई दिन भूखे रह जाना पड़ता है। कहीं कोई आसरा नहीं।'—भूख की मार से सताए हुए डोमन ने बड़ी दीनता से धीमे स्वर में कहा।

'घबड़ाओ नहीं....'

'घबड़ाओ नहीं डोमन, सबके भाग पलटेंगे।'—घुरफेंकन पाठकजी के मुँह से बात लोक कर कहने लगा।

'तुम्हारा तो भाई, जूते का कारोबार है। शहर के लोग आएँगे तो फिर बिक्री बढ़ेगी। मगर हमारे जैसे....'

'फिर वही बात ! अरे, जिगना और बलचनवाँ दोनों बिलाक आफिस में चपरासीगिरी करने लगेंगे तो तुम्हारा भाग नहीं पलट जाएगा—पहली के खटाखट रूपइया गिन लोगे।'—रघुफेंकन ने अँगूठा ठनकाते हुए कहा।

डोमन के चेहरे पर छन भर को बिजली कौंध गई। चपरासी गरु और रुपल्ली···दोनों साथ ही साथ····सोने में सुहागा !

वह आशान्वित हो हँस पड़ा तो पाठक महाराज ने कहा—'डोमन बात समझता है मगर जरा देर से।'

'क्या करूँ महराज, मोटी बुद्धि····'—डोमन की आँखें एक अजीब पुलक से भर गईं और उसकी ऐसी निश्छल बातें सुनकर सभी हँसने लगे।

सुबह की बेला। नरेन्द्र गढ़ की बगल के बगीचे में दातून करता टहल रहा है। पुरानी स्मृति उसे घेरे हुए है। उसके पिता की शादी में यह बाग लगाया गया था। एक बहुत पुरानी कहानी।....

कि एक ओर से सोहन साह पगड़ी बाँधे लपके चले आए। झुक कर सलाम किया।

'क्यों साहजी, आज इतने सबेरे कैसे तकलीफ की ?'

'यों ही सरकार ! सरकार मालिक हैं—गाँव के राजा। सुबह-सुबह राजा के दर्शन का बड़ा महात्म है।'—और, झट इलायची की एक पोटली नजर में भेंट की।

'अभी रखिए, मुँह धो लूँ।'—नरेन्द्र मुस्कुरा उठा।—'कहिए, आपकी कैसी हालत है ?'

'किसी तरह जिन्दगी कट रही है सरकार ! जमींदारी क्या गई, हम सब अनाथ हो गए।'—वह बहुत गिड़गिड़ाने लगे।

'अब उन बातों को भूल जाइए। फिर जमींदारी गए काफी दिन बीत

गए। अब तक तो आपलोगों को नए सिलसिले से तालमेल बैठा लेना चाहता था '।—वह कुछ अजीब तरह से मुस्कुरा उठा। साहजी भी उस मुस्कुराहट का राज कुछ ताड़ गए। झटपट सम्हल गए।

'हाँ सरकार, रोजी-रोटी का कुछ-न-कुछ रास्ता तो निकल ही गया है।'

'हाँ, तो यह कहिए कि जिन्दगी अब मजे में कट रही है।'—वह फिर दातून करने लगा। साहजी चुप रहे।

'कहिए, कंट्रोल की दूकान कैसी चल रही है ?'

'खाने भर मिल जाता है। कपड़ा और किरासन तेल ही बेंच पाता हूँ। गेहूँ का कोटा तो पुराने बी० डी० ओ० साहब ने कटवा दिया। मेरे बदले परानपुर के राजाराम साह को दिलवा दिया। वह अब सब माल 'बिलाक' में बेंच देता है और भूखी जनता को कुछ नहीं मिलता।'

'यह तो बड़ा जुल्म है।'

'हाँ सरकार, घूस खाकर पुराने बी० डी० ओ० ने ऐसा कर दिया।'

'तो आपने भी····क्यों नहीं उसे कुछ चटा दिया ?'

'राम-राम ! सरकार भी हमसे मजाक करते हैं क्या ? घूस-दलाली के नजदीक हम नहीं जाते सरकार !'

नरेन्द्र उसे देखकर एक बार फिर हँस पड़ा। वह सहम गया। सेंध पर पकड़े गए चोर की तरह।

'रामचन्द्र बनिया का क्या हाल है ? उसे भी तो चीनी का कोटा है !'

'बड़े मजे में हैं सरकार ! लिस्ट के मुताबिक माल कोटा आते ही बेच देते हैं ! जरा भी गड़बड़ी नहीं करते। मगर उनपर भी पुराने बी० डी० ओ०

की बड़ी कड़ी कड़ी निगाह रही। लाख पैरवी पर भी उनका कोटा नहीं बढ़ाया। हालाँकि सबसे ज्यादा ग्राहक उसीकी दूकान पर जुटते हैं। उनके साथ भी हमारे ही जैसा बड़ा अन्याय हुआ। हमारा गेहूँ का कोटा काट दिया गया और उनका कोटा बढ़ाया नहीं गया।'

'और गोधन ?'

'सरकार, उसकी कोयले की दूकान न होती तो आज देनी साह का सारा परिवार इत्र सूँघते और मगही पान कचरते स्वर्ग सिधार गया होता। वही दूकान तो उसकी जान है। घर-घर उसीका कोयला जाने लगा और अब ईंटे के भट्टे के लिए भी कोयला जुटाते उसकी तबाही हुई रहती है। सुना है—अब ट्रक का नम्बर भी लगाए हुए है, शायद अपना ट्रक हो जाए तो माल जुटाने में उसे आफियत हो।'

राव नरेन्द्र सिंह, बी० डी० ओ०, बसन्तपुर अंचल, इन सारी बातों को सुनते रहे। गाँव आते ही उन्हें खबर मिली कि सोहन साह कंट्रोल की दूकान मिलते ही साह से बादशाह हो गया है। हर साल अटारी पर अटारी बनती जा रही है। रामचन्द्र साह अब बड़े साहुजी कहलाने लगा और गोधन का भी ट्रक खरीदा जा रहा है। वह इन्हीं बातों में डूबता-उतराता गढ़ के फाटक पर पहुँच गया।

'अच्छा, तो इस समय जाइए साहजी, फिर मिलिएगा। जरा दौरे पर तुरत चला जाना है। जीप तैयार खड़ी है।'—वह धड़फड़ाता ऊपर चढ़ने लगा।

'ऐं! इस परात में क्या सजा रखा है बिलट्टू ?'

'बाबू, आप बाग चले गए रहे तो सबेरे-सबेरे सोहन साह जी पहुँचे

और बोले कि इसे रख लो। बनारस नेहान में गए रहे तो वहीं से मालिक के लिए राम भण्डार से मिठाइयाँ तथा कुछ फल-फलहरी लिये आए।'...'

'उफ, मैं आदमी हूँ या राक्षस ? भला अकेला—तनहा आदमी इतना सब कैसे खा जाएगा ? बस, एक-दो फल-मिठाई रख लेना चाहता था—बाकी लौटा देते।'

'मुझे सूझा नहीं उस वक्त। बस, रखकर चलता हुए।'

नरेन्द्र चुप।

'चुप क्यों हैं बाबू, आप अफसर हैं—लोगबाग डाली तो लगाएँगे ही। पिछले बी० डी० ओ० के यहाँ तो इससे भी बड़ी-बड़ी डालियाँ लगती थीं। यह तो कुछ भी नहीं है। फल-फलहरी, कपड़े, किराना के सब सामान, आदि।'

नरेन्द्र चुप।

'वह तो यह सब लेने में तनिक भी नहीं हिचकते थे। जो नहीं लाता, उससे तो वह चिढ़ जाते रहे। और आप हैं जो फिक्र में पड़ गए हैं !'

नरेन्द्र गुमसुम।

'यही नहीं, कान में एक बात और कह दूँ—यही साह सब तो पीछे गड्डी के गड्डी नोट तक उन्हें थमा देते रहे। मगर यह सब हमारे सामने नहीं होता। हमें पान-सिगरेट लाने भेजकर होता। मगर मैं सब ताड़ जाता। कभी-कभी परदे की ओट से सब खिलकत देखता। पीछे तो उसने घिना दिया। सोहन साह से भी पैसा ले लेता और परानपुर के राजा राम साह से भी। दोनो पार्टी से लेने लगा। इसी से तो बदनामी फैल गई और लोगबाग जिला में तार भेजने लगे तो उसकी बदली हो गई।'

'तो बिलट्टू, मुझे अपना आदमी समझ कर तुम मेरी भी वही हालत कराना चाहते हो ? बताओ बिलट्टू, क्यों रख लो यह डाली—बताओ ! मेरी भी हँसाई कराओगे—लोगबाग यही न कहेंगे कि राव वीरेन्द्र सिंह का पोता घूसखोर है।...बताओ—चुप क्यों हो बिलट्टू !—बताओ।'—वह उसे पागल की तरह झकझोरने लगा—'मौन क्यों हो बिलट्टू ? बताओ—आज तुम्हें बताना ही होगा।....'

बिलट्टू को तो काटो तो खून नहीं। उसे तनिक भी आशा नहीं थी कि नरेन्द्र इस तरह भावुक हो पागल की तरह करने लगेगा। बिलट्टू की आँखों में आँसू भर आए। नरेन्द्र ने डाली उठाकर छत पर फेंक दी। मिठाई, फल सब जमीन पर बिखर गए।

'तो कान फाड़कर सुन लो बिलट्टू ! आज से ऐसी चीजें कभी घर में न लेना। जो लाए उसे वापस कर देना। इन्हें अभी वापस करो !'—इस बार उसकी आवाज में एक दृढ़ता, एक बुलन्दी थी।

बिलट्टू सन्न है। इतनी छोटी बात का इतना तूल !

कुछ देर बाद नरेन्द्र तैयार हो जीप पर सवार हो दौरे पर निकल पड़ा। वीरान धरती, सपाट खेत। इस साल सूखा पड़ गया है। वर्षा की कमी के कारण धान के सब पौधे खेत में ही सूख गए। किसान उन्हें काट-काट कर मवेशी को खिला रहे हैं। नदी, ताल, तलैया में पानी एक लकीर-सा बह रहा है। बरसात के उत्तरार्द्ध में यह हालत देखकर वह हैरत में है।

वह जीप रुकवा देता है। पास खड़े एक किसान को बुलाकर पूछता है—

'क्या हाल है ?'

'कुछ न पूछिए मालिक, सब बर्बाद हो गया। घामी के चलते धान सूख गए। अब भगवान ही का सहारा है। देखते नहीं, काँसा फूट रहे हैं। अब बरसात भाग गई। रात में तरेगन चमकते रहते हैं। भोर में शीत गिरने लगी है।'—वह काला-कलूटा लम्बा-चौड़ा किसान प्रकृति की मार से झुक गया है। उसकी आवाज लड़खड़ा रही है—'घर में बीवी, चार बच्चे और बूढ़ी माँ—सब इसी खेत पर आश्रित हैं; फिर शादी-विवाह, मरनी-जिअनी, बीमारी-हमारी—सब इसी पर····। अब क्या होगा ?'

वह आसमान निहारता है। नरेन्द्र उसे निहारता है। उसकी वेदना को परखने की कोशिश करता है।

'हुजूर, स्वर्ग-आसरा खेतों की यही हालत होती है। रात-दिन आसमान निहारते रहिए, हवा का रुख देखते रहिए। इधर के किसान बड़े दुःखी हैं। नहरवाले खेतों से इनका क्या मुकाबला ?' —ड्राइवर ने कहा।

'क्यों जी, पानी का इधर कोई प्रबन्ध नहीं ?'

'मालिक, अमौना ताल पर मिट्टी हर साल पड़ती है मगर ठीकेदार सब पैसा खा जाता है। शुरू बरसात में ही बाँध बह जाता है। देखते नहीं, बिजली की लाइन सामने दौड़ रही है। मगर इतने पैसे कहाँ कि बिजली लूँ, पम्प बैठाऊँ और आफिस को भी चटाऊँ! यह सब तो बड़ों के लिए है। हम छोटे किसान तो आसमान के भरोसे जिन्दा हैं।'

नरेन्द्र के साथ बड़ा बाबू भी थे। सब बातें जैसे गटर-गटर पीते रहे और बगलें झाँकते रहे।

नरेन्द्र जीप पर बैठकर आगे बढ़ता है। रास्ते में पूछता है—'क्यों बड़ा बाबू, क्या किया जाय ?'

'हुजूर, हम कोई जादूगर तो हैं नहीं कि जादू से पानी बरसा दें। बस, अब कोटा के गेहूँ का ही भरोसा ये रखें !'

'मगर कोटा उठाने का इन्हें पैसा हो तब तो।'

'हुजूर, कुछ हार्ड मैनुअल स्कीम 'सैंक्शन' कराना होगा ?'

बड़ा बाबू की बाँछें खिल उठीं। अमरीकी गेहूँ का कोटा, सोहन साह की अटारी, रामचन्द्र साह की दूकानदारी और उसकी डाक बुलवाना—जो सबसे ज्यादा देगा, उसे ही कोटा का माल बेचने का अधिकार मिलेगा।

नरेन्द्र अपने आप में खो गया है। जीप गाँव के सीवान के बाहर रुकवाता है। दुसाधटोली क्या है, सूअरों की माँद है। सूअर और आदमी दोनों एक ही तरह मिट्टी के छोटे-छोटे घरौंदों में रहते हैं। इतनी कम ऊँचाई कि उसमें कोई बैठ भी नहीं सकता। दर्जनों घरौंदे, दीवाल की मिट्टी झर रही है, फूस का छाजन तार-तार हो रहा है। मरघट का दृश्य—टूटी-फूटी मिट्टी की हाँड़ियाँ इर्द-गिर्द पड़ी हैं। सूअर के झुंड कुछ सूँघते-साँघते, नथने फुलाते चारों ओर घूम रहे हैं और उन्हीं के साथ बच्चे भी खेल रहे हैं। उनके पेट निकले हुए, हाथ-पैर सिरकी, सफेद-सफेद निर्जीव आँखें सर के फ्रेम में जड़ी हुईं, नंग-धड़ंग—सिर्फ गले में किसी ओझा की दी हुई गन्दी ताबीज लटक रही है।

गाड़ी से किसी अफसर को उतरते देखकर चिथड़ों की सिली हुई मैली साड़ियाँ पहने औरतें चिल्ला पड़ती हैं—'दुहाई मालिकजी की, दुहाई ! पानी-बिना हम तरस रहे हैं। दो कोस जाकर अमौना ताल से पानी लाना

पड़ता है। कितनी गगरी फूट गई—ऊबड़-खाबड़ जमीन, आधा पानी छलक जाता है। गर्मी में वह भी सूख जाता है।'

'क्यों, यहाँ चम्पाकल नहीं लगा है ? क्यों बड़ा बाबू; इस गाँव की दुसाधटोली में तो चम्पाकल 'सैंक्शन' हो चुका है !'

'ना ए मालिक, चाँपाकल एको दिन ना चलल। ठीकदार गाड़-गूड़ के भाग गइल। तब से ना आइल। पानी एक बूँद ना गिरे। मर गइलीं हमनी का। गाँव के कुआँ पर बबुआन के डर के मारे के जाव ?'

नरेन्द्र चुप है। बड़ा बाबू भी चुप हैं। दोनों क्या जवाब देते ? माथा पीटते रहे। औरतें अपना दुःख सुनाती रहीं। दो-चार सांत्वना के शब्द कहकर नरेन्द्र फिर आगे बढ़ गया। समतल धरती—प्रकृति की मार से उसकी छाती टूक-टूक हो रही है।—दरारें फूट पड़ी हैं। निर्जन गाँव, पृथ्वी और भूखे पृथ्वी-पुत्र।

'ओहो, टेनी बाबा ! आज आपने क्यों तकलीफ की ? मैं ही थोड़ी देर बाद नहा-धोकर आपके यहाँ पहुँच जाता। अभी दौरे से आ रहा हूँ। गर्द-गुबार से भरा हुआ। उफ्, रास्ता इतना खराब और पानी न बरसने के कारण धूल उड़कर आसमान छू लेती है।'

'बाबू, यह जीप सवारी पिछली लड़ाई में ऐसी निकली कि आप जैसे बड़े आदमियों को भी सुदूर देहात में पहुँचा देती है वरना घोड़े पर जाइए या हाथी पर। इसीलिए आपके बाबा के जमाने में हाथियों का एक अस्तबल ही था। एक-से-एक फीलबान और फिर वैसे ही सुन्दर झूल ! अब तो हाथी देखने को नहीं मिलता—जिधर देखिए उधर ही जीप या ट्रैक्टर। सब जंगल कटकर खेत बन गए और नीलगाय की तो जैसे जात ही उदस गई।'

'चाचा, अब पेड़ भी कहीं नजर आने को नहीं। दूर-दूर तक नजर दौड़ाइए—खाली खेत—धनहर। जब पेड़ ही नहीं तो अब क्या धान खिलाकर कोई हाथी पालेगा ?'—बिलटू ने कुछ सोचते हुए कहा। फिर

एक प्याली चाय उसने टेनी बाबा को भी बढ़ाई और नरेन्द्र ने अपने लिए दूसरी प्याली फिर भरी।

'मगर चचा, आप तो बड़का मालिक का जमाना देख चुके हैं—गजराज हाथी तो कभी भी अस्तबल में नहीं बँधा।'

'हाँ, वह तो बराबर बड़का पोखरा पर ही बँधता। वह मस्ताना कभी अस्तबल में रह सकता था? जब तक मूसा फीलबान उस पर नहीं बैठता भला वह कभी काबू में आता? मगर वह भी आदमी पहचानता था। जब रावसाहव हौदे पर बैठते तभी वह हौदा रहने देता वरना क्या मजाल कि हौदा बाँध कर उस पर कोई सवारी कर ले! मगर समैया के समय सरकार उसे देहात में भेज देते वरना भीड़भाड़ में क्या खतरा हो जाय और कितनी तवायफों का खेमा भी पोखरे के किनारे ही गिरता—कब किसको मसल दे वह गजराज। ओह, वे भी क्या दिन थे···उमंगों में बसे दिन, उम्मीदों में बसी रात—दो दिन जी लिए जवानी में, जिन्दगी उम्र भर नहीं होती।'

'वाह बावा! आप भी जबानी के दिनों को याद कर पूरे शायर बन जाते हैं—आँखों में वही अन्दाज, जबान पर वही तराश!····तो आपका क्या ख्याल है बाबा! मेहरुन्निसा भी तवायफ थी?····' —नरेन्द्र ने पूछा।

'हरगिज नहीं! जो यह कहता है वह सरासर झूठ बोलता है।····' —बाबा एकबारगी तमक उठे। अस्सी के पड़ोस में पहुँच कर उनका मुरझाया हुआ चेहरा चमक उठा—'नहीं-नहीं, वह देवी थी—साक्षात् देवी, सती-साध्वी।····"एकहि धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥' ····एक ही····एक ही नेमा····उफ, वह संध्या मुझे कभी नहीं

भूलेगी—कभी नहीं''''कयामत की साँझ—इतिहास के पन्ने की वह सुखद यादगार''''''''''''"

शाम का वक्त। रावसाहब दुतल्ले की छत पर टहल रहे हैं। कुछ खोए-खोए-से दिख रहे हैं। अब फुहार बरसे—तब बरसे। मल्लिकजी भी रावसाहब के पीछे-पीछे टहल रहे हैं मगर कुछ बोलते नहीं। उन्हें समझ में नहीं आता कि क्या करें। यदि फिर सवाल करते हैं तो मुश्किल, नहीं करते तो मुश्किल। उन्हें छत पर आते ही देखकर रावसाहब ताड़ गए कि मल्लिकजी क्या चाहते हैं। कभी ऐसा जान पड़ता कि रावसाहब अब बोले तब बोले। मगर सचमुच कुछ बोल नहीं पाए। अजीब ऊमस का वातावरण।

उधर मेहरुन्निसा का असबाब सब बँध चुका है। वह विदा होने के लिए मुंतजिर बैठी है। अम्मीजान घर लौटने को परेशान हैं, मगर यहाँ दरबार से छुट्टी ही नहीं मिलती। समैया कब का खत्म हो चुका। मेहर दो-चार बार महल में आकर गा भी चुकी, काफी इनाम भी मिले, मगर छुट्टी नहीं मिली।''''मल्लिकजी धीरे से कमरे में आकर बैठ गए तो पाठकजी फुसफुसाने लगे—'कुछ हुक्म मिला ? अजीब बात है !'

'उसी के लिए तो रात-दिन दौड़ रहा हूँ मगर जब पूछता हूँ तो सरकार चुप हो जाते हैं। जाने क्या सोचने लगते हैं। इधर उसकी माँ जान खा रही है।'

मल्लिकजी चुप हो गए। शाहंशाही अनुशासन है—कोई जबान खोले तो कैसे !

'पाठकजी, जरा आप पूछें न, शायद कोई जवाब मिले।'

'वाह ! आप भी खूब निकले ! राजा के मन के खिलाफ भला कभी कुछ किया जाता है ? लात खाने के लिए मैं ही हूँ ? मैं कुछ न पूछूँगा। क्षमा करें आप।'

मल्लिकजी माथा ठोंककर चुपचाप बैठे रहे। नीचे जाने से डरते रहे कि कहीं रमजान चाचा से न भेंट हो जाए और फिर वही सवाल वह भी पूछ बैठे—'कहिए, क्या हुक्म हुआ ? आपलोग हमारी परीशानी सरकार तक पहुँचाते ही नहीं। सरकार को पता रहता कि अब हम जाने को तैयार बैठे हैं तो कब की विदाई हो गई होती। बड़ी मैना, छोटी मैना, अलकापरी, सब जा चुकीं सिर्फ हमारे लिए ही खजाना बन्द है।'

'पाठकजी, कोई रास्ता निकलवाइए। हमें भी घर जाना है। पन्द्रह दिन गाँव से आए हो गए। बीवी, बाल-बच्चे परीशान हैं। उधर रमजान मियाँ आज सुबह से ही हमको पकड़े हुए हैं—क्या हुक्म हुआ ? बार-बार यही पूछता है। क्या करूँ, कुछ, समझ में नहीं आता।'

....फिर रावसाहब कमरे में चले आए। पाठकजी और मल्लिकजी खड़े हो गए। रावसाहब ने बड़े गौर से दोनों को देखा। फिर मल्लिकजी की ओर मुखातिब होकर बोले—'मल्लिकजी ! आप मेहरुन्निसा और उसकी माँ को खाँ साहब वाले मकान में ठहरा दें। वह मकान भी खाली है। साफ-सुथरा भी है। परदा का पूरा इन्तजाम है। एक दाई और नौकर भी वहाँ भेजवा दें और चौके का सारा खर्च खजाने से दिया जाएगा।'

इतना कहकर रावसाहब फिर छत पर चले गए। मल्लिकजी को जान पड़ा कि गश आ जाएगा। यह क्या सुन रहे हैं ? पाठकजी भी सकते में आ गए। यह क्या ? यह क्या ? दोनों सन्न ! दोनों अवाक् !

संध्या अंधियारी में बदलते-बदलते बसन्तपुर में यह खबर बिजली की तरह फैल गई कि मेहरुन्निसा खाँ साहब के मकान में रहने चली आई है और उसका सारा खर्च सरकारी खजाने से दिया जाएगा। जो कोई भी यह खबर सुनता, चौंक पड़ता। आखिर क्यों? ऐसा क्यों? फिर कोई कहता—वह अपरूप सुन्दरी है, अनिंद्य। दूसरा कहता—कमाल का गला पाया है उसने—उफ, गाती है तो मधु चू जाता है। इसी गले की बदौलत आज वह इतनी इज्जत पा गई। धन्य है मेहर—धन्य है!

बिलट्टू उन दिनों छोकड़ा रहा। मेहर के यहाँ उसी को रखवा दिया गया। एक दिन मेहर ने माँ से कहा—'अम्मी, आज रावसाहब ने अपनी पसन्द की एक ठुमरी मुझसे गाने को कहा। मैं सकते में आ गई। सब कड़ियाँ मुझे याद नहीं थीं। अब क्या करती! बड़ी पशोपेश में पड़ गई। भरी महफिल! मल्लिकजी मेरे दिल की धड़कन की रफ्तार ताड़ गए। झटपट आकर कान में गुनगुना गए। मेरी इज्जत रह गई। वही बीचवाली लाइन मैं भूल रही थी।'

अम्मी जान ने उसे गले से लगा लिया—'वाह, बड़ी चतुर हो गई मेरी लाड़ली! मगर बेटी, जब दरबार में अक्सर गाने जाना पड़ता है तो कुछ रेयाज और बढ़ाओ। दिन में मल्लिकजी आ ही जाते हैं, कुछ पक्का गाना पर भी ज्यादा तवज्जह दो। ऐसा न हो कि कोई फरमाइश हो और

तुम झेंप जाओ। क्या ठुमरी, क्या दादरा, क्या गजल और क्या राग-रागिनी—सब पर समान अधिकार हो जाय तुम्हारा।'

'इतनी मिहनत मुझसे न होगी अम्मी! मुझे मुआफ करो। बस, समैया में चंद नमूने पेश करने को तुम मुझे यहाँ लाई थी, अब महीनों बिता दिए और अब चाहती हो कि इतना रेयाज कर लूँ कि पूरी गायिका बन जाऊँ। यह मुझसे न होगा।....कभी-कभी जी ऊबने लगता है—इस घर का कोना-कोना काटने लगता है।....अब कब घर लौटना होगा अम्मी? चाचा तो लौट ही गए।'

'लो, इतने आराम से हो यहाँ। फिर जिस दरबार में बड़ी मैना, छोटी मैना जैसी मशहूर तवायफों की पूछ है वहाँ तुम भी मैदान मार गईं—यह क्या कम इज्जत है तुम्हारे लिए? यह तो खुदा का शुक्र है कि यह उम्र और यह हुनर! सभी तुम्हारे हुनर की दाद देते नहीं अघाते। ऐसा मौका बार-बार नहीं आता बेटी! ऐसे मौके से पूरा लाभ उठा लो।'

अम्मीजान की आँखों में कुछ अजीब चमक लौट आई मगर मेहर उसे देख नहीं पाई—समझ नहीं पाई। वह अपनी केशराशि धूप में सुखा रही है और हवा की खुनकी उसकी नस-नस में समा रही है।

राजमणि देवी पलंग पर पड़ी-पड़ी छत के शहतीर गिन रही हैं। बांदियों ने खबर सुनाई है कि रावसाहब के हुक्म से मेहरुन्निसा सरकारी मेहमान बनकर बसन्तपुर में ही रह गई है। राजमणि देवी का तीर आज

बहुत दिन बाद निशाने पर बैठा है। रावसाहब से मिलकर तथा जमकर कुछ बात करने को बहुत आतुर हैं मगर वह आजकल महल में आते ही कहाँ ? रात-रात भर महफिल जमी रहती और दिन में लोगों से मिलना-जुलना—रियासत का कारबार। उन्हें अब फुरसत ही नहीं कि जनानखानें में भी आएँ। और कभी आते भी तो किसी अदृश्य आशंका से दो-चार बातें कर राजमणि देवी उन्हें बाहर विदा कर देतीं।....तो क्या किया जाय !....बाहर बैठकखाने में ही परदा कराकर पहुँच जाऊँ एकाएक ! मेरी बात कभी उठाएँगे नहीं।....

और वही हुआ एक दिन। आधी रात के बाद जैसे रावसाहब मेहर से भैरवी सुनकर उठे कि बाहर बैठकखाने में ही परदा कराकर राजमणि देवी दाखिल हो गईं।

'ऐं, तुम ! इतनी रात गए बाहर कैसे चली आईं ? खैरियत तो है !'

'हाँ, सब खैरियत है भैया, तुमसे भेंट हो नहीं पाती, इसीलिए सोचा—यहीं आकर बात कर लूँ।'

'वाह ! तुम भी खूब निकली ! जरा सी खबर भेज देती—मैं ही अन्दर चला आता.... ।'

'नहीं-नहीं, मैं अकेली मिलना चाहती रही....'

'बाहर से परदा रहे—कोई अन्दर आने न पाए।' —पहरेदारों को कड़ी चेतावनी देकर रावसाहब एक बड़े कोच पर बैठ गए। उनको बगल में

बैठकर राजमणि देवी ने अपना दास्तान शुरू किया—'भैया, मुझे पूरी खबर है, मेहर गायिका ही नहीं, एक सुन्दर नारी भी है। सूरत तो उसे भगवान ने दिया ही है मगर उसके पास सीरत भी है बेशुमार। वह तो अभी बच्ची है—भोली-भाली। बिल्कुल अछूती। उसे तवायफ कहना तो उसपर लांछन लगाना है। उस दुनिया से तो वह कोसों दूर है। एकदम अनभिज्ञ। तुम्हें नहीं मालूम कि जब उसकी सवारी बसन्तपुर में आई तो उसकी माँ ने मेरे पास खबर भेजवाई कि मेहर को समैया में गाने का मौका दरबार से नहीं दिया जा रहा है। दुहाई दिदियाजी की, हमारा नमूना भी पेश हो। तब मैंने मल्लिकजी को बुलवा कर कहा कि मेहर के साथ अन्याय न हो—उसे भी अपनी कला दिखाने का मौका दिया जाए। फिर तो वह ऐसा रंग लाई कि सब पागल हो गए। ····सर्वगुण-सम्पन्न है वह····उसे रख लेने में कोई एतराज नहीं होना चाहिए····तुम्हारी जिन्दगी बन जाएगी····और मैं····उफ, कितनी खुश होऊँगी तुमको इतना खुश देखकर !····

रावसाहब चुप बैठे रहे। कुछ बोले नहीं। रात ढलती गई, बत्तियाँ गुल होती रहीं और राजमणि देवी कहती चली गईं—

'और तुम्हें झिझक क्यों होती है? यह तो हमारी परम्परा रही है बराबर। रियासत का यही तो सुहाग है और हमारे युग की यह माँग भी रही है निरन्तर। नसीबन, हमीदा, कज्जन—सभी इसी कड़ी की········'

···

···············रावसाहब कोच पर ही मसनद लगाकर सो गए हैं। राजमणि देवी कब की महल में जा चुकी हैं।'

'टेनो बाबा ! काफी देर हो चुकी है। चलिए, अब आपको घर छोड़ आऊँ। अँधेरी रात और आपका सिन दूसरा···· ।'

'नहीं-नहीं, आप भी क्यों····मेरी लाठी जबतक बरकरार है तबतक कुत्ते और बच्चे दोनों मुझसे दूर भागते हैं····अजी साहब, रहने भी दें आप—बिलट्टू लालटेन लेकर मुझे घर छोड़ आएगा। बारी धोबी के घर के सामने गली में बारहो मास पानी लगा रहता है। अपना गन्दा पानी अब गली से ही बहाता है। जल्दी ग्रामपंचायत का चुनाव कराइए कि इस तरफ भी किसी की निगाह आए वरना हम तो नरक में जी रहे हैं। जमींदारी जाने के बाद किसी से कुछ कहना-सुनना भी अपने पर बैठे-बिठाए झमेला मोल लेना है। कोई किसी की बात सुनता है अब भला ! मैं तो किसी के दरवाजे पर अब जाता ही नहीं। यह तो खुदा का शुक्र जो आप यहाँ आ गए—आपके पास बैठकर जी बहला लेता हूँ वरना मेरी दुनिया कबकी लुट चुकी।'

'बिलट्टू, मेरा टॉर्च दो, मैं बाबा को पहुँचा आऊँ और धोबी राम से कह दो कि यहाँ सिमेंट का एक पाइप तो लगा दे।'

दोनों नीचे उतर आए तो गेहूँ के गोदाम की ओर इशारा करते हुए बाबा ने कहा—'यही राजमणि देवी के पति का कमरा था। यहीं सब षड्यंत्र बनते। एक रात मैंने देखा कि कमरे के सभी दरवाजे बन्द हैं और अन्दर बत्ती जल रही है। कुछ आहट भी मिली। बाबा आपके एक चतुर—झट आड़ में खड़ा होकर सुनने लगा। राजमणि देवी बोल रही हैं—'आप फिक्र न करें। महल की रानी को तो बच्चा होने से रहा। ऐसो

दीवार मैंने खड़ी कर दी है कि उसका पत्ता कटकर रहा। दिल में मेहर घर कर ही गई, एक दिन घर में भी आकर बैठ जाएगी।'

'तो फिर····?'

'फिर तुम्हारा बेटा रियासत का मालिक होगा, उस तवायफ का नहीं! समझे?' पति महोदय मुस्कुरा उठे। राजमणि देवी खुशी से नाच उठीं। और मैं—मैं इस रहस्य का राज जानकर हाथ में जूता लिये इसी रास्ते झट चम्पत हुआ।'

गढ़ से बाहर दोनों आ गए थे। सिपाही ने बी० डी० ओ० साहब को सलामी दागी और नरेन्द्र बाबा को टॉर्च दिखाता उनकी गली की ओर बढ़ चला।

'रामजतन बाबू ! श्यामलाल ठीकेदार आ गया है ?'

'जी हाँ हुजूर ! वह तो सुबह से ही चक्कर लगा रहा है ।'

'तो फिर बुलाइए मेरे पास ।'

वह बी० डी० ओ० साहब के ऑफिस में हाजिर होता है । उसे देखते ही नरेन्द्र का पारा चढ़ जाता है । रामजतन बाबू अपना चश्मा नाक के नीचेवाले हिस्से तक सरका लेते हैं । श्यामलाल झुककर सलाम करता है और बड़े अदब से खड़ा हो जाता है । गोरा गुलफुल शरीर, सफेद चिट्टा । आँखों से चतुराई झलक रही है ।

'आपने अपनी तारीफ सुनी है ?'

'सरकार''''।'

'सरकार-वरकार नहीं, अमौना ताल का बाँध पहली ही बरसात में टूट गया—ऐसा क्यों ?'

'हुजूर ! ओवरसियर साहब सब नाप लेकर मिट्टी का काम पास कर चुके थे ।'

'ओवरसियर को कितना चटाया था ?'

'एक पैसा भी हराम है सरकार !'

बड़ा बाबू को यह रिमार्क अच्छा न लगा। भौंहें चढ़ गईं।

'तुम बड़े निर्दयी आदमी हो। हजारों किसानों का परिवार अमौना ताल से पानी लेकर धान उगा कर अपनी परवरिश करता था मगर तुमने सबको उजाड़ दिया। भगवान ने भी उनके साथ खिलवाड़ किया—पूरा पानी नहीं बरसाया और उधर तुम्हारे जैसे इंसानों ने उन्हें तबाह कर दिया। क्या उनकी आह लेकर तुम्हारे बाल-बच्चे फल-फूल सकते हैं ?'

'हुजूर, ये सारी बातें मेरे रकीबों ने आपके कानों में भर दी हैं। जिनका टेंडर मंजूर नहीं हुआ, उन्होंने मेरे खिलाफ ऐसा प्रचार कर दिया है। काहे को बाँध बह जाय और काहे को खेत सूखें। जब दैव ही बिगड़ जाय तो आदमी का चारा ही क्या !'

'इसी दैव ने तो तुम्हें दानव बना दिया। फिजूल बको मत। मैं अपनी आँखों से सब नजारा देखकर आ रहा हूँ। ताल में कहीं मिट्टी नहीं। सारे खेत सूखे पड़े हैं। किसान धान काट-काट कर मवेशी को खिला रहे हैं। और, तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती।'

बड़ा बाबू समझते कि ये सब फिजूल बातें हो रही हैं। पहले कोई भी हाकिम ऐसा नहीं मिला जो इतनी बाल की खाल निकालता। यह तो अजीब सिरफिरा है।

'हुजूर ! ओवरसियर साहब को बुलाकर आप पूछ लें। जब उन्होंने काम पास कर दिया तभी काम बन्द हुआ। इसमें हमारा कोई कसूर नहीं। बाँध बह जानेवाली बात बिलकुल गलत है मालिक !'

'हाँ हजूर, ऐसी बात तो मैं अब ही सुन रहा हूँ। जब बाँध टूटा तभी हो-हल्ला होता, मगर उस समय तो कोई आवाज नहीं उठी''''।'

'अजी साहब, उन गरीबों का केस बिना किसी मतलब के अब कोई भी गाँव का लीडर तो पेश करता नहीं—वे तो अपने भाग्य पर पड़े कराह रहे हैं। हाँ, वोट का जमाना रहता तो सभी चिल्ल-पों मचाए रहते।'

रामजतन बाबू चुप हो गए। नरेन्द्र ने बहुत देर तक दोनों को ठठाया मगर दोनों एक घाघ—खूब तेल लगा कर अखाड़े में उतरे थे। एक दूसरे को बचाते रहे। नरेन्द्र सारा खेल समझ रहा है मगर चारा क्या है?

'मंगर पाँड़े''''पाँड़ेजी''''!'

'जी हुजूर!''''' परदा हटाकर मंगर पाँड़े चपरासी झुक कर सलाम करता है।

'ओवरसियर साहब आए हैं?'

'जी, अभी देखता हूँ।' —कहता मंगर पाँड़े बारहदरी में घुस गया। जिस बारहदरी में जमींदारी सिरिश्ता था उसी में आज सरकारी ऑफिस भी है। मंगर पाँड़े जमींदारी सिरिश्ते का भी चपरासी था और आज नए राज का भी चपरासी हो गया है। ऑफिस में नई शक्लों के साथ पुरानी शक्लें भी दो-चार दिखाई पड़ जाती हैं। पुराने स्टाफ में से चुनकर कुछ लोग नए ऑफिस में ले लिये गए हैं। ओवरसियर बिन्दा प्रसाद की बहाली अभी तीन साल पहले हुई थी। इंजीनियरिंग स्कूल से पास कर वह सीधे सरकारी नौकरी पा गया और इसी ब्लॉक में भेज दिया गया। वह उस समय अपनी सीट पर नहीं था। मंगर पाँड़े उसे हर कमरे में खोजने लगा। आखिर

ऑफिस के बाहर चाय पीते वह नजर आया तो पाँड़े ने पुकारा—'ओवर-सियर साहब ! बड़े ऑफिस में आपको बुलाहट है। बी० डी० ओ० साहब आपको याद कर रहे हैं।'

'चलो, आते हैं।' —वह चाय की चुस्की लेता उसी लापरवाही से एक दूसरे ठीकेदार से बातें करता रहा।

'नहीं हुजूर, जल्दी चलें। साहब और ठीकेदार श्यामलाल में बड़ी गरमागरम बहस चल रही है। साहब बहुत बिगड़े हैं।'

'अरे जाओ-जाओ, यह नया बी० डी० ओ० क्या आया है, आफत का परकाला आया है। सबको चोर ही समझता है। चलो, आते हैं। ऐसा डरूँ तो दुनिया-जहान से ही चला जाऊँ।'

बिन्दा प्रसाद ने टेरिलिन के बने अपने नए सूट की ओर एकबार फिर निहार कर अपनी टाई ठीक की और दो बीड़े पान एक गाल में तथा दूसरा बीड़ा दूसरे गाल में दबा लिया। ठीकेदार सुरती बढ़ाकर चूना उसके हाथ पर रखने लगा।

चाय-पान पी-खाकर बिन्दा प्रसाद बी० डी० ओ० के ऑफिस में घुसता है। उसे देखते ही नरेन्द्र पूछ बैठता है—

'बिन्दा बाबू, अमौना ताल के बाँध टूटने के बारे में आपको क्या कहना है ?'

'हुजूर, कुछ भी नहीं कहना है। एक्जेक्यूटिव इंजीनियर साहब ने जैसा ऑर्डर दिया था उसी मुताबिक बाँध बना। एक-से-एक बड़े अफसर बराबर आते गए और काम पास करते गए। उसमें कोई शक-सुबहा की गुंजाइश ही नहीं। सब काम आँकड़े के मुताबिक हुआ। यदि बाँध टूट

गया तो ऊपर से पूछा जाय। मैंने तो सरकारी आदेश और अनुदान के मुताबिक काम करवा दिया और ठीकेदार साहब ने मेरे आदेश का पूरा पालन किया। मैं तो समझ ही नहीं रहा हूँ कि यह मामला इतना तूल क्यों पकड़ता जा रहा है।'—ओवरसियर साहब कुर्सी खींचकर वहीं बैठ गए।

'बिन्दा बाबू, आपने बात तो बड़े सीधे-सादे तरीके से कह दी मगर यह तय तो नहीं हो रहा है कि इसका उत्तरदायित्व किस पर 'फिक्स' किया जाय !'

'बिन्दा प्रसाद शिकार खेलना सीख गया है। उसने झट कहा—'हुजूर, मामला ऊपर भेजिए। जब मुझसे पूछा जाएगा तो मैं जवाब दूँगा न !'—ओवरसियर साहब मुस्कुराने लगे—जैसे कुछ हुआ ही न हो !

'मामला ऊपर तो जाएगा ही, मगर हमें भी तो कुछ रिपोर्ट भेजनी पड़ेगी। मैं अमौना ताल के क्षेत्र का दौरा कर अभी लौटा हूँ। सारे गाँववाले एक मुँह से कह रहे हैं कि ठीकेदार पैसा हजम कर गया। बाँध पर पूरी मिट्टी नहीं दिलवाई जिसका नतीजा हुआ कि बाँध शुरू बरसात में ही टूट गया। उनकी सारी फसल मारी गई। हाहाकार मचा हुआ है। आखिर अमरीकी गेहूँ खिलाकर कितने दिनों तक उन्हें जिन्दा रखिएगा ? ऊपर से ऑर्डर आता है कि खाद्य के मामले में देश को अपने पर निर्भर होना है मगर यहाँ तो आपलोग कुछ होने ही नहीं देते। जरा छाती पर हाथ रखकर कुछ सोचिए तो आप····!'

बिन्दा प्रसाद के सर पर पाँच परसेंट कमीशन का नशा छाया है, उन्हें इस समय इंसानियत क्या सूझती ? रामजतन बाबू को ठीकेदार के भरोसे

अपने पक्के मकान की बनाई सूझ रही है—उन्हें ये बातें फिजूल की यों ही बकवास-सी लगती हैं और श्यामलाल समझता कि यह तो आए दिन का खेल है। जब से ठीकेदारी का काम हाथ में लिया तब से यही रविश रही हर डिपार्टमेंट की—आज यह पूछ-ताछ क्यों? फिर तीनों ने बारी-बारी से यही कहा—'हुजूर, मामला ऊपर बढ़ा दें। इस माथापच्ची में आप क्यों पड़ते हैं? बड़े-बड़े इंजीनियर इस पर सोच-विचार करें। हम क्या जानें कि क्यों बाँध टूटा? फिर ऊपर से जब कोई पूछताछ नहीं हो रही है तो आप एक हंगामा क्यों खड़ा करने जा रहे हैं? आजकल हमारी नीति यह होनी चाहिए कि अपनी खामियों को छिपा दें और एक आप हैं कि तिल को ताड़ किए जा रहे हैं। हुजूर का अभी नया-नया खून है, जोश-खरोश में कोई गलत कदम न उठ जाए कि सब-के-सब परेशान हो जाएँ। इसलिए बुद्धिमानी यही है कि जो मामला जहाँ है, वहीं दफना दिया जाए····।'

बाबू नरेन्द्र राव सिंह बी० डी० ओ० तमक-झमक कर चुप हो गए हैं। ऑफिस ने उन्हें ऐसा बाँध दिया है कि उनकी सारी हेकड़ी गुम है। बात अगर आगे बढ़ानी है तो अपनी जिम्मेवारी पर वह आगे बढ़ाएँ—ऑफिस से उन्हें कोई सहयोग नहीं मिलेगा। बड़ा बाबू, मँझला बाबू, छोटा बाबू—ऊपर वाले बाबू और नीचे वाले बाबू····ओवरसियर बाबू और कैशियर बाबू····सभी अपने अन्नदाता ठीकेदार साहब को बचाने के लिए एक होकर बी० डी० ओ० के सारे प्लैन विफल करने पर तुले बैठे हैं। साहब बहादुर अब जाते हैं तो किधर!

तीनों एक साथ बाहर निकले और दूर हटकर फुसुर-फुसुर बातें करने

लगे—'अजीब बेवकूफ की दुम है। ऊपर रिपोर्ट भेजने दो इसे। कहीं कुछ न होगा—यह मुँह की खाकर रह जाएगा। ए० डी० एम० के ऑफिस में इसकी एक न चलेगी।'

मंगर पाँड़े एक कनखी से उन्हें देखता रहा और जब तक वे बातें करते रहे, अपने कान उधर ही लगाए रहा।

'ओ पानकुँवर, अरी ओ····!'

'आई-आई !'

'अरे दरवाजा खोलो, मैं हूँ भाई····!'

पानकुँवर ने सिकड़ी खोल दी।

'तुम तो ऐसा चिल्लाते हो जैसे मैं तुम्हारी आवाज पहचानती ही नहीं।'

'पहचानती तो इतनी देर क्यों लगाती ?'

'ए लो, चौके में रोटी जो सेंक रही थी। गीली लकड़ी लाकर डोमन पटक देता है तो क्या करूँ ? फूँकते-फूँकते जान आफत में है।'

मंगर पाँड़े खाट पर बैठ जाता है।

'अब इस गाँव में लकड़ी के चूल्हे का रिवाज खत्म हो रहा है इसलिए जलावन को लकड़ी कहीं मिलती ही नहीं। ऐसी परीशानी है कि क्या कहूँ ? सारे पेड़ सरकारी हो गए और जो बचे हैं वे सब हरे हैं। यह तो बाबूगंज से कुछ लकड़ी डोमन ला देता है तो काम चल जाता है। पान कुँवर, मेरा इतना वेतन नहीं कि जलावन खरीदा करूँ।'

'तुम हो बड़े मक्खीचूस ! जब से ब्लाक के चपरासी हो गए हो, रोज

कुछ-न-कुछ मामूली मिलता रहता है मगर बराबर गरीबी का ढोल पीटते रहोगे। आखिर इतना नोट तहाकर क्या करोगे—न जोरू, न जाँता.....'

'और तुम जो हो !'—कहकर उसने पानकुँवर की पीठ थपथपा दी। वह सरककर चौके में चली गई।

'और गेहूँ क्या कंट्रोल से उठा लाते हो—एक चौथाई कंकड़ है। उफर पड़े इस सोहन साह को। कंट्रोल की दूकान क्या चलाता है, हम गरीबों को लूट लेता है। दो दिनों से गेहूँ बीन रही हूँ मगर फिर भी पूरा कंकड़ न निकल सका। आज खाना रोटी—एकदम किनकिन। आग लगे ऐसी दूकान में !'

'पानकुँवर, एकदम अंधेर मचा है—अंधेर। अजी, कुछ न पूछो, दिमाग काम नहीं करता।'

वह डोल उठाकर आँगन के कुएँ से हाथ-मुँह धोने के लिए पानी खींचने लगा।

'दूकान दिलाने के समय सोहन साह तुम्हारी भी खुशामद करने लगता है मगर जब दूकान मिल जाती है तो आँख बदल देता है। उससे कुछ अच्छा गेहूँ क्यों नहीं माँगते ?'

'अजी, बनिया का जीव धनिया ऐसा होता है। काम निकल जाने पर सलाम तक नहीं सुनते ये लोग। फिर कोटा बढ़नेवाला है। देखो, कोई टिप्पस भिड़ाऊँगा। अरे, इस रामजतन के चलते कोई कुछ कर पावे तब

तो ! सब मलाई अकेले अपने चाभ लेता है।....अच्छा पानकुँवर, अब कुछ खिलाओ। बड़ी भूख लगी है। यह चाय क्या निकला है, ससुर पानी से भी बदतर हो गया है। जो आता है, कहता है—पाँव लागूँ पाँड़ेजो, चलिए एक गिलास चाय पी लें। चलो भाई, यही सही। और कोई मोटा आसामी आया तो एक मिठाई या सिंघाड़ा और दूध का इसपीसल चाय—नहीं तो लो, गर्म पानी में पाउडर का दूध। साला आँत भी जलकर खाक हो जाय 'पेंसिन' मिलते-मिलते।'

'देखो, चाय-वाय ज्यादा न पिया करो। यह ताड़ी से भी खराब है।'

'ए लो, हर जगह चाय की गुमटी खुल गई है—जहाँ सरकारी ऑफिस हो वहाँ चाय-पान की दूकान जरूरी समझो। समझो कि चाय की गुमटी और ऑफिस से बराबर लर लगा रहता है। एक जाता है, दूसरा आता है। दूसरा जाता है, तीसरा आता है। चाय-पान, चाय-सिंघाड़ा, चाय-चारमीनार—बस, इसी की झड़ी लगी रहती है। इस बीच कोई काम किसी का हो जाय तो गनीमत समझिए नहीं तो लटके रहिए हफ्तों।....अच्छा है, गाँव के लोगों की आमदनी इससे कुछ बढ़ ही जाती है। देखती नहीं, इमलीतले कितने होटल खुल गए। रोटी-गोश्त खूब बिक रहा है। और, ये खानेवाले क्या बसन्तपुर के हैं—धत्, यह मजदूरों का गाँव—क्या कमाकर खाएगा—बस, बाहरवाले ही यहाँ आकर पैसा फेंक जाते हैं। ब्लॉक यहाँ क्या आया, जान आ गई ! नहीं तो कितने घरों में ताला लग जाता।'

'अरे, कुछ खाओगे भी या बात ही बनाते रहोगे ?'

'क्या खाऊँ....यह रोटी चलती नहीं। कुछ दिन का भात-वात....।'

रखे हुई हूँ, वही खा लो।'

'लाओ-लाओ, आज वही सही ।'

'भतहा इलाके के लोग का भला कभी रोटी से पेट भरेगा ?'

'ना, यह न कहो—यह कोटा का गेहूँ बहुत इज्जत थामे हुए है। नहीं तो देखना देहातों का हाल। जिसको एक धूर भी जमीन नहीं है वह इसी कोटे पर जी रहा है।'

मंगर पाँड़े दाल-भात खूब मगन हो खाने लगा। बीच-बीच में पानकुँवर लौकी का बजका छानकर दे देती तो वह चौंक पड़ता—'अरी, यह बजका—वाह !'

'चौंको नहीं, छान पर एक लौका आज दिख गया, उसी का एकाध बजका बना दिया तुम्हारे लिए। कुछ बेसन घर में पड़ा था। तुम डर गए कि खरीद कर लौकी तो नहीं मँगा ली मैंने !....है....न।'

'तुम हो पक्की ग्रिहस्थिन....मान गया मैं....।'

और वह डूब गया। मरने से कुछ दिन पहले उसकी पत्नी ने उससे कहा था—'पानकुँवर ने मेरी बहुत सेवा की। यह दूर की मेरी छोटी बहन लगती है। यह न रहती तो मैं खाट पर सड़ कर मरती। बिचारी बाल-विधवा है—बड़ी दुखिया, सताई हुई। मेरे बाद इसे इसी घर में रहने देना। तुम्हारा खाना बना दिया करेगी और इसकी काया को भी दो कौर भात मिल जाएगा। ऐसे इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं। कहीं जिन्दगी से ऊबकर यह अपनी जान न दे दे या कोई इसे फँसा कर किसी दूसरी जातिवाले के हाथ बेच न दे।....ब्राह्मण जाति की विधवा—भला इससे कौन शादी करेगा ? छोटी जाति की रहती तो किसी घर बैठ भी जाती।....इस घर में भी अब ऐसी स्त्री का प्रवेश होने से रहा.... घोर दरिद्री

में कौन अपनी बेटी को तुम्हारे घर पहुँचा देगा और तुम्हारे पास इतने पैसे नहीं कि किसी गरीब की बेटी को खरीद लाओ····।'

और, तबसे पानकुँवर मंगर पाँड़े के घर में ही रहने लगी। घर का सारा बोझ उसी पर पड़ा। उसकी बड़ी बहन तो स्वर्ग सिधार चुकी थी।

खाकर तृप्त हो लेने के बाद मंगर पाँड़े खाट पर पड़ रहा। दिन भर का थका-हारा जो था। सिरहाने मचिया पर बैठकर पानकुँवर उसे तेल लगाने लगी—'लाओ, तुम्हारे माथे में जरा तेल मल दूँ—कई दिन से तेल नहीं लगाए हो।'

'बस, यही तो मैं चाहता था। मगर लाज से कुछ कह नहीं पाता था।'

'वाह, इसमें लाज की कौन-सी बात है?'

'ओह, आज बड़ा आराम मिल रहा है पानकुँवर। तुम्हारी बहन भी ऐसे ही तेल लगाती थी। मगर उन दिनों इतनी थकान नहीं लगती थी। रावसाहब की नौकरी मनमौजी थी। मगर यहाँ तो दस से छह बजे तक एक पैर पर खड़े रहो। फिर इसको बुलाओ, उसको पुकारो—उफ, जान आफत में रहती है।····'

आज पानकुँवर का उसके सर में तेल मलना उसे बड़ा अच्छा लगा और उसे और भी लगी उसकी गरम-गरम साँस या सर दबाते-दबाते उसके शरीर का स्पर्श।

खट-खट-खट····।

'ऐं, कौन है? साले घर पर भी जान नहीं छोड़ते।'

'बाबा, पाव लागी—मैं हूँ डोमन।'

'अच्छा, तुम हो—ठहरो, दरवाजा खुलवाता हूँ।....पानकुँवर, एक मिनट चैन नहीं। सोना भी हराम है....खोल दो दरवाजा।'

दरवाजा खुलता है और संध्या की अँधियारी में दरवाजा खोल कर उसे भागते देख डोमन जरा मुस्कुराता है। फिर लकड़ी का एक बोझा दालान में गिरा देता है।

'सूखी है या गीली ?'

'बाबा, आपके लिए खास कर लाया हूँ। जंगल से चोरकर। एकदम सूखी।'

'खैर, तुम इतना तो मेरा ख्याल करते हो।'

'मगर बाबा, आप मेरा ख्याल नहीं करते हैं।'—कहता वह दूर हटकर बैठ जाता है।

'क्यों, क्या बात है ?'

'आपसे कह ही चुका हूँ कि जिगना और बलवनवाँ मुझे अब गाँव में नहीं जीने देंगे। रात-भर मछली मारते हैं, मुझे डर घेरे रहता है—कहीं पकड़ा न जाएँ। अब तो गाँव के मालिक जिनका वह पोखरा है वही बी० डी० ओ० बन कर आ गए हैं यहाँ। अब कहीं उन्हें किसी काम पर लगवा दें न। बार-बार तो आपसे कह रहा हूँ मैं। फिर बान उनका छूट जाएगा।'

'डोमन, यह अफसर बड़ा बेढब आया है। किसी का एक भी नहीं सुनता। नया-नया खून है। आज सारे ऑफिस पर बिगड़ा रहा। वह अमौना ताल का जो बाँध बह गया उसके लिए ठीकेदार साहब, ओवरसियर और बड़ा बाबू पर बहुत बिगड़ा है....।'

'बाबा, यह बिगड़ना तो ठीक ही है। इन्हीं के चलते तो धान सब सूख गए।'

'जो हो, मगर इधर पैरवी जरा कम चल रही है।'

'तब जो हुक्म'—डोमन की आँखों के सामने फिर अँधेरा छाने लगा। आज बड़ी आशा लेकर आया था। पाँड़े ने झूठ या सच आश्वासन दिया था कि नए बी० डी० ओ० के आने तक इंतजार करो मगर नए बी० डी० ओ० के आए भी कितने माह बीत गए किन्तु उस गरीब का बेड़ा पार न लग सका गोकि इस बीच जाने कितनी सूखी लकड़ी वह उसके घर पहुँचा गया।

कुछ देर सोच-समझ कर पाँड़े ने फिर कहा—'एक रास्ता निकल सकता है डोमन।'

'जय महराज जी की....' डोमन के सामने फिर एक किरण झलक गई।

'गोधन चार रिक्शा खरीद लाया है। उसे जवान छोकरों की जरूरत है। नहीं तो बसन्तपुर से स्टेशन तक कौन रात-दिन रिक्शा चलावेगा? अधेड़ या बूढ़ों के मान का यह काम नहीं। आज कह रहा था कि बाबा, ब्लॉक का अब सब काम रिक्शा से होगा—आप ही आदमी ठीक कर दें। बस, दोनों को कल रखवा देता हूँ। रोज का ठीका रहेगा। इस महँगी में अब कोई घोड़ा रख कर इक्का नहीं चला सकता। दाना ही नहीं जुटेगा। बस, रिक्शा से मालिक और मजदूर दोनों पैसा पीट देंगे।'

'जय हो बाबा की—जय हो! आपने हमारी डूबती नैया को बचा लिया। भगवान आपका भला करे।'—वह खुशी से खड़ा हो गया और

सोचने लगा कि पाँड़े जी का पैर पकड़ कर दबा दें। मगर फिर डर गया—वह मुसहर और वे बाभन, कहीं छुलाने से इनकार न कर दें। बस, गद्गद हो उन्हें हाथ जोड़ने लगा।

'ठीक है, कल ऑफिस में आ जाओ तो वहीं गोधन से मिला देंगे। तुम्हारा काम हो जाएगा। कल कोयले का परमिट बनवाने उसे ऑफिस में आना भी है।'

डोमन दरवाजा बन्द कर घर की ओर लपका तो पानकुँवर ने अन्दर से किल्ली बन्द कर दी—दीया जला दिया !

'ओ सुखिया की दादी—ओ सुखिया की दादी, ओ सुखिया—जरा किल्ली खोलो न, खुशखबरी लाया हूँ—खोल-खोल····सब साली सो गईं। यहाँ कौन धन गड़ा है कि साँझ से ही किल्ली ठोंक देती हैं। अरी खोल न, ओ····ओ सुखिया !'

सुखिया दरवाजा खोल देती है।

'अरे क्या हल्ला मचाए हो ? फिर पीने लगे हो क्या ? सुखिया मछली पका रही थी—मैं उठ सकती नहीं—फिर दरवाजा कौन खोलता ?'

'लो, यहाँ खाने को पैसे जुटते नहीं—दारू कहाँ से पीऊँगा ? तुम भी कहाँ की ले उठती हो ?····अरे, तुम्हारे दोनों पोतों को काम लग गया····!'

बुढ़िया चिहा कर बड़बड़ाने लगी—काम लग गया ! धन सायरी

माई।····धन—इस बार तुझे गुलगुला चढ़ाऊँगी। अरे, कहाँ काम मिला है ?'

'गोधन साहू के यहाँ····रेक्सा चलावेंगे—रेक्सा····।'

'राकस ? राकस खेलावेंगे ?····राकस तो भूत है।'

'धत् पगली ! रेक्सा····रेक्सा····गाड़ी····गाड़ी····सायकल····सायकल····देखा है न····वही····।'

'ओ ! अब समझी····क्या देगा ?'

'उसका फिकिर तुम छोड़ो····बहुत देगा····उससे घर भर जो जाएगा—सुखिया की शादी के पैसे भी जुट जाएँगे।'

'ओ धन सायरी माई—धन। पुआ भी चढ़ाऊँगी—पूरी भी····धन सायरी माई !'

जिगना और बलचनवाँ बंसी लिये घुसते हैं। बाबा को देखकर सहम जाते हैं और अँधियारी में बंसी को कोने में छिपा देते हैं।

'ओ, आ गए तुमलोग—चलो, बैठो यहाँ—देखो, कान देकर सुन लो—कल से पोखरा पर गए तो नया बी० डी० ओ० तुम्हारा पैर तोड़ देगा। यह डुगडुगी पिटा गई है।····अब कल से तुम दोनों को गोधन का रेक्सा चलाना होगा—समझे ?'

'रेक्सा—रेक्सा—!'

रिक्शा का नाम सुनते ही उनके बाजू फड़फड़ा उठे—उनकी जवान रानें तड़तड़ा उठीं—उमंग में झूमकर खड़े हो गए।

'वाह बाबा, खूब काम मिला। मन लायक ! टीसन पर रेक्सा देखकर हमारा मन ललक उठता था।'—वे पैर चलाने की मुद्रा में कूदने

लगे—'बाबा, कल से देखना, खूब रेस में रेक्सा चलावेंगे—सबको पटरा कर देंगे।''''वाह् ! खूब काम मिला ! एक छलांग में बाजार से सरयू के घर तक, दूसरी छलांग में नहर के पुल पर, तीसरी छलांग में कलानी के मोड़—फिर काव का पुल—बसगितिया और फिर टीसन। बस, छः छलांग में टीसन ! समझे बाबा ! और पैसा—पैसा तो ठिकरा कर देंगे। हर ट्रेन में सवारी देखेंगे और यहाँ से ले जाएँगे।'

'रात में मत चलना। कोई लूट लेगा तो होश आ जाएगा—समझे ?'—बाबा ने चिताया।

'अब रात-दिन रास्ता चल रहा है। कच्ची का जमाना गया। अब पक्की रोड है। सरसर जीप, सायकल, बस, सब चल रहा है।'

'रेक्सा—जीप और बस तो नहीं न है।'

'देखना हमारा रेक्सा जीप से भी तेज चलेगा।'

डोमन ने आज बड़ा स्वाद ले-लेकर मछली-भात खाया। जिगना और बलचनवाँ तो रात-भर अपना रेक्सा सजाने-सँवारने का सपना देखते रहे। लाल-लाल झंडी, ऐनक, चर्खी, सिनेमा के फोटो और रास्ते में यह तराना''''यह लाल दुपट्टा मलमल का''''ओ''''मलमल का !

गाँव का अगहनी भोर। धुन्ध, धुन्ध। पूरब की ओर लालधौंहा रंग। घुरफेंकन फराकत हो हिरामन के घर की ओर चल पड़ा।

'ओ-ओ हिरामन की माँ'! ओ धनिया!····अरी, ओ धनिया!····अरी, कहाँ हो····री···।'

'कौन? ओ, तुम घुरफेंकन भाई!············कहो, आज इतना भोरे-भोरे····'

'कटनी में मैं भी चलूँगा। अब बुढ़ापे में एक बार फिर हँसिया उठाने जा रहा हूँ।'

'ओह, हाय रे भाग! यह हाल हो गया तुम्हारा?'

'क्या करूँ, जूता का काम एकदम ठप्प है। अब पुराना जमाना गया। सब मोल-मोलाई करके खर्चा तक देने को तैयार नहीं। अब परता नहीं पड़ता।········फेंकू कहाँ है? घर में ताला लगा है।'

'पता नहीं। कोई कह रहा था, पाठकजी के साथ शहर गया है।'

'शहर !····काहे को·········'

'आजकल बड़ी शहर दौड़ते हैं। पाठकजी के साथ-साथ। मुझे नहीं मालूम—मैं तो कटनी पर जा रही हूँ। और सोनपति की माँ····'

'वह आगे बढ़ गई ? मैंने सोचा—फेंकू को भी साथ ले लूँ·····'

'वह इस साल कहाँ जा रहे हैं ! जब होता—पाठकजी के साथ शहर दौड़ जाते।'

घुरफेंकन आरी-आरी बाबूगंज की ओर बढ़ रहा हैं। सोच रहा है—फेंकू और शहर ! बात क्या है ?

'राम-राम, मुखिया जी !'

'राम-राम, घुरफेंकन राम ! बहुत दिन बाद आज नजर आए। आज इधर कैसे-कैसे ?'

'सब दिन एक समान नहीं न रहते ! व्यवसाय जब ठप्प हुआ तो हँसिया उठा लिया'—कहता घुरफेंकन सोनपति को माँ के साथ खेत में हँसिया ले घुस गया। उसे कटनी करते देख सोनपति की माँ मुस्कुराती रही। मुखिया भी मजाक करता—'अपने साथ तुम अपने भतार को भी खींच लाई ?'

वह खिलखिला पड़ी।

खेत में कटनी बड़े जोरों से लगी है। जितनी दूर नजर जाती, उतनी दूर झूमती हुई धान की बालियाँ, कटे हुए बोझे—बूढ़े, जवान, बच्चे—मर्द

और औरतें—भीड़-ही-भीड़ दिखाई पड़ती। जान पड़ता जैसे सारी धरती जाग उठी है और उसके हजारों-हजार बच्चे उसके स्तन को चूस रहे हैं—नोच रहे हैं।

'मुखिया जी, उफ, इस साल तो कटनिहारों का बड़ा गिरोह उतरा है। जान पड़ता है सारा बलिया-गाजीपुर जिला इधर ही उमड़ता चला आया है।'

'घुरफेंकन जी, हर साल हमलोग नहीं आते तो क्या आपका बेड़ा पार होता? आपलोग कितने हैं जो इतना खेत काट सकते?............यह तो हमलोग नाते-रिश्ते, बच्चे-कच्चे यहाँ पहुँच जाते हैं कि यह यज्ञ पार लग जाता है। इस साल पच्छिम में बड़ा सुखार हो गया है इसीलिए गाँव-का-गाँव इसी इलाके में उतर आया है।'

फिर मुखिया हँसिया रखकर सुस्ताने लगता है और घुरफेंकन से खैनी लेकर ओठतले दबाकर बोलने लगता है—'भाई जी, अब तो अवस्था दूसरी हुई, नहीं तो इस भुजा की करामात आपको दिखा देता। अभी हालतक दो कट्ठे खेत तो मैं अकेले कर लेता रहा। मगर अब परिवार बढ़ गया—नाती-पोते बड़े हो गए—वह खुराक भी अब नहीं। अब उतना काम हो नहीं पाता।'—उसने वहीं पच्च से थूककर हँसिया उठा लिया और लगा बड़े जोश-खरोश से काटने। घुरफेंकन इस बूढ़े में भी जवानों जैसी उमंग देखकर दंग है। जबसे उसने होश सँभाला तबसे वह झींगुर भगत को इस गाँव में कटनी के लिए आते देखा है। झींगुर अब अपने गिरोह का लीडर हो गया है और सभी इसीलिए उसे मुखिया कहकर पुकारते हैं। वह अक्सर कहता—बाबूगंज के ऊसर जमीन को हमने छूकर उपजाऊ

बना दिया। हम जब आते रहे तो चारों ओर जंगल-ही-जंगल था—खेत बहुत कम दीखता था ; मगर अब तो सब जंगल कट गए—जिधर नजर दौड़ाओ, बस, सपाट खेत-ही-खेत। बाबू रामजतन सिंह का जमाना था—नम्बरी घुड़सवार और शिकारी। हिरन के शिकार में हिरन के साथ-ही-साथ घोड़ा दौड़ाते। उफ, क्या मर्द था वह भी ! पूरे छ: फीट ऊँचा। आजकल के मालिक रामभजन सिंह से भी दो मूठ ऊँचा। क्या खूबसूरत जवान ! एक बार देखने पर नजर गड़ी ही रह जाए। आजकल के दिनों अपने दालान में पुआल बिछा देते और सभी कटनिहार उसी में सो रहते। अब तो घर-घर जाकर जगह ढूँढ़नी पड़ती है। इतना बड़ा दालान अब ढह-ढिमला गया। क्या करें बेचारे रामभजन बाबू, जमींदारी ही चली गई। सारी आमदनी का सोत ही सूख गया। अब खेती पर इतना सब थोड़े हो सकेगा।'

....

'क्या जी मुखिया, कब का किस्सा सुना रहे हो ?....'

'ओ !....तो आप यहीं हैं ? आप ही के दादाजी का बखान कर रहा हूँ। हमलोगों को अपना बाल-बच्चा समझते रहे।'

किसुन एकदम छैला बना वहाँ घूम रहा था। धप-धप सफेद धोती और सिलिक का फहराता हुआ कुरता, उसपर गर्म जवाहर बंडी और गले में गुलूबन्द। कुछ इधर-उधर गौर से देख भी रहा था।

'तुम तो ऐसा कहते हो जैसे अब तुम्हारी कोई पूछ ही नहीं।'

'ना मालिक, यह बात नहीं। पुराने दिनों का किस्सा खुल गया था—बस, इसीलिए।'

'क्यों जी, सोनपति की माँ, सोनपति नहीं दिखती। आज कटनी पर नहीं आई क्या ?'

'मालिक, आई तो है—उधर कहीं काट रही होगी।....'

वह चारों ओर आँखें नचाकर उसे देखने लगता है। फिर जाने किस सुर में आगे बढ़ जाता है तो मुखिया बोलता है—'बड़ा ही लम्पट छोकरा यह निकला है। एकदम नालायक। घर का नाम डुबा देगा—छीः।'

बाबूगंज के बाबू रामभजन सिंह का इकलौता बेटा श्रीकृष्ण सिंह—किसुन बाबू के नाम से इस इलाके में मशहूर है। पढ़ा-लिखा तो खाक-पत्थर—बस, दिनभर खुराफात किए रहता है। बाप के लिए तो सरदर्द हो गया है। खेत के जिस टोपरे से निकल जाता, लोग सहम जाते—खास कर जवान छोकरियाँ।

'ओ री सोनपति ! अरी, ओ....अच्छा, तुम आज इस टोपरे में सोनिया के साथ धान काट रही हो ? मैं तो समझ रहा था कि अपनी माँ के साथ....।'—किसुन आँखें गड़ा-गड़ा कर उसे देखने लगा। फिर कुछ नजदीक चला आया—'अरी वाह ! माथे पर यह चन्द्रमा के समान टिकुली—कहाँ से मार लाई हो ?' और, वह ठठाकर हँस पड़ा। सोनपति शर्मा कर जमीन में गड़ गई।

सोनिया ने बात काटी—'का मालिक, आप भी क्या-क्या निहारते रहते हैं ?'

'जरूर उसी मौगा मनिहारी से ली होगी जो भोर-पराते गाँव की गली-गली में माथे पर टोकरी लिये चिल्लाता घूमता रहता है—ले लो इंगुर-टिकुली लगनौती सगुनौती। ले लो....'

दोनों लाज से गड़ जाती हैं। अगल-बगल की औरतें भी उससे चुहल करती हैं—'बड़ी ऊँची जा रही हो सोनपति, अरी हाँ....!'

सोनपति और सोनिया से दो-चार भद्दे मजाक कर वह आगे बढ़ा तो सोनिया ने कहा—'सोनपति, तुमको देखकर यह ललक उठता है। है बड़ा बदमाश। जरा बचकर रहना इससे। जाने कैसा तो है। मुझे तो जरा भी नहीं सुहाता।'—उसने तिरछी नजर से सोनपति को निहारा। वह चुप रही। कुछ न बोली।

'बोल, चुप क्यों हो गई ? तुम तो ऐसी बन जाती हो जैसे कुछ जानती ही नहीं।'

'दीदी, वह जैसा भी हो, हमें क्या लेना-देना ? वह बाबू, हम चमारिन।'

'वही तो मैं भी कहती हूँ। फिर भी जाने क्यों वह हमारे पीछे पड़ा रहता है।'

'पड़े रहने दो दीदी, मगर वह इतना बुरा नहीं है जितना तुम समझती हो। तुम तो इस साल इस खेत में पहली बार कटनी करने आई हो। हम तो कई साल से आ रही हैं। माँ नहीं भी आती तो धनिया चाची के साथ मैं चली आती रही।'

'तो चोर पकड़ गया सेंध पर !'

'नहीं, हमको उससे क्या मतलब ! वह जैसा भी हो ।'

सोनिया हँसिया उठा फिर काटने लगी । सोचती—जरूर कोई दाल में काला है ।

उधर सोनपति ने पुआल को गुलेट कर रस्सी बनाई और उससे बोझा बाँधने लगी । भारी बोझा तैयार हो गया । उसे उठाकर सर पर रखना खेल न था । वह पशोपेश में थी कि किसुन फिर उधर दौड़ता चला आया और हँसते हुए बोला—'देख, तुम हो बड़ी पगली । यह देह और यह बोझा ! भला तुमसे अकेले उठेगा ? ले, ले—पकड़, ले, मैं हाथ लगा देता हूँ—एक पकड़ में उठा लूँगा ।'—और उसने हाथ लगा दिया । सोनपति जरा झुक गई और किसुन ने एक झटके से बोझा उठाकर उसके माथे पर रख दिया । सोनिया और उसकी सहेलियाँ बड़ी कटी-कटी सोनपति को देखती रहीं । किसुन सोनपति के पीछे-पीछे चल पड़ा ।

खलिहान के नजदीक भगत ने यह तमाशा देखा तो उसकी आँखों में लहू उतर आया । मगर, कुछ बोलता क्या, बस कुड़कुड़ाया—बदमाश ! फिर नजर गड़ा रहा है । बस, इसी हँसिया से····।'

'राम-राम ! मुखिया जी ! आज कैसे-कैसे इतना पराते आना हुआ ?
........आइए-आइए, बैठिए।.....'

घुरफेंकन अभी दातून ही कर रहा है कि झींगुर भगत इतना भोरे-भोरे आ धमका।

'यों ही फराकत के लिए इधर निकला रहा—सोचा, तुम्हें भी देखता जाऊँ।'

'आइए-आइए, दातून कर लें—फिर यहीं कुछ पा लें....।'

'नहीं-नहीं, दालान में खाना बन रहा होगा।'

'यह कौन कहता है कि आपका खाना नहीं बनता होगा, मगर आज बड़े भाग से आप हमारे यहाँ पधारे हैं तो आज यहाँ हो जूठन गिराएँ। लीजिए यह दातून....घर का ही इनारा है—इतमीनान से मुँह-हाथ धो लें।....ओ री सोनपति....सोना ! देख, बाबा आए हैं, माँ से कह दे कि झट अपने साथ-ही-साथ बाबा को भी चोखा-भात और अचार खिला दे, नहीं तो इन्हें कटनी की देर हो जाएगी। और हाँ, रातवाली सगौती भी गरम करके।'

'और तुम ?'....

'देखते नहीं, कल एक माल मिल गया। उसी की खाल कल दिन भर छुड़ाते रहे। आज आग पर लटका देना है—मसाला-वसाला लगाकर। यह कारबार भी तो चलता ही रहता है। सिर्फ कटनी के सहारे थोड़े जिन्दगी कटेगी।'

'अच्छा-अच्छा, ठीक है!....'

भगत मुँह-हाथ धोकर जब पुआल पर आकर बैठा तो घुरफेंकन से धीरे-धीरे कहने लगा—'देखो भाई घुरफेंकन, उस किसुनवाँ से जरा होशियार रहना—तुम्हें चेता देता हूँ—है बड़ा लम्पट—तुम्हारी बेटी पर आँख गड़ा रहा है। सोनपति की माँ को आगाह कर दो, नहीं तो एक दिन झमेला हो जाएगा....।'—भगत इतना कहकर उसका मुँह निहारने लगा।

'भगतजी, यह तो मैं आज पहले-पहल सुन रहा हूँ। कहिए तो बाबूगंज भेजना उसे मना कर दूँ।'—वह कुछ अचम्भित हो बोल गया।

'नहीं-नहीं, ऐसा क्यों करोगे, मगर उसकी माँ से कह दो कि बराबर उसे अपने साथ रखे....समझे ?'

'जी, समझा....।' —घुरफेंकन अभी भी कुछ उदास, कुछ चकित नजर आ रहा है।

'ना-ना, इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं। बस, जरा सावधान हो जाना है। तुम तो तनिक में घबड़ा जाते हो। हम गरीबों की जीविका भी तो यही है। इसे छोड़कर हम जी भी तो नहीं सकते....मगर हरामजादे

ये खेतवाले—अभी भी छेड़खानी करने से बाज नहीं आते···अब हमें भी सावधान रहना है। बहुत सहा उनका !'

घुरफेंकन भी अब तमतमा उठा—'भगतजी, एक दिन हम इनके खेत पर जाना छोड़ दें तो ये सब बबुआन भूखों मरने लगेंगे। हमसे खेत भी कटवाते हैं और हमारी बहू-बेटियों पर आँखें भी गड़ाते हैं—बदमाश ! कहो तो आज ही जुटान करा दूँ !'

'फिर वही बेवकूफी ! बात का बतंगड़ मत करो। मेरा कहा बिनकहा हो जाएगा। जमाना खराब है—सोच-समझ कर चलना चाहिए। तमतमाओ नहीं। ऐसा तो अक्सर होता रहता है, मगर कोई तलवार थोड़े उठा लेता है। सब्र सवाल का रास्ता है। सोनपति की माँ से कह दो कि सोनपति को अकेली न छोड़ा करे—बस, इसीसे काम बन जाएगा।'

भगत ने बहुत समझाया-बुझाया तो घुरफेंकन का गुस्सा शान्त हुआ। सोनपति थाली भर गरम-गरम भात और अचार भगत के सामने रख गई और एक लोटा में पानी। अचार को खूब सराह-सराह कर वह भरपेट खा गया और डकारता हुआ खेत की ओर—क्यारी-क्यारी—बढ़ चला।

माँ-बेटी चलने को तैयार हुईं तो घुरफेंकन माँ को अलग ले जाकर फुसुर-फुसुर बुदबुदाने लगा—'कुछ सुना तुमने ?'

'हाँ, मैं किवाड़ की ओट से सब सुन रही थी। मेरा भी कुछ ऐसा ही शक है। वह लफंगा········'

'तो तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा ?'

'मैं सोच ही रही थी कि आज भगतजी ने तुमसे सारी बातें बता दीं। धनिया और मैं भी काफी सतर्क हूँ। बनी का बटवारा कराकर अब बाबूगंज

जाना बन्द कर देना है। तमाम सारे खेत पड़े हैं। बीरपुर जाया करूँगी। ठाकुरों से जान बच जाएगी। ब्राह्मण फिर भी नरम होते हैं।'

'फिर चलो, थोड़ी देर में मैं भी आ रहा हूँ—माल में मसाला लगा कर। आज मैं भी तुम्हारे ही टोपरे में कटनी करूँगा—देखूँ कौन नजर गड़ाता है!'

'हाँ, ठीक तो है।'

आगे-आगे सोनपति की माँ, बीच में सोनपति, फिर धनिया—एक कतार में आरी-आरी बढ़ी चली जा रही हैं। माँ का तन भारी है, मन भारी है, मगर सोनपति—सोनपति आज बहुत खुश है—भोरे-भोरे उठकर तेल-फुलेल लगाकर, चन्द्राकार टिकुली साट ली है जो भोर की किरण पड़ते ही चमक उठती है। लाल-लाल साड़ी और खूब माँजकर चमकाया हुआ गिलट का कंगन। फिर उम्र ऐसी जब बेटियाँ एक समान सुथर लगने लगती हैं।

'कहो घुरफेंकन जी! कैसे चले आए? आज तो आनेवाले नहीं थे आप!'

'भाई जी, अब अकेले मन नहीं लगता। सोचा, काम निबटाकर चल ही चलूँ........आपने तो कितना टोपरा काट डाला।'

'यही काम ही है। जल्दी काम निबटाकर आगे बढ़ना है।....देखो, वह कैसा घूर रहा है! एकनम्बरी छँटा हुआ....।'

'जी चाहता है, गला दबोच दूँ।'

'होशियारी से काम लें—होशियारी से। बस, अपने से चौकन्ना रहें—फिर बेड़ा पार है।'

किसुन आज परेशान है। सोनपति एकदम बीच में माँ-बाप से घिरी धान काट रही है। किनारे-किनारे बूढ़ा भगत घेरा डाले हुए है।'''तो ये सब ताड़ गए क्या?—हरामजादे। इनकी बिसात ही कितनी! हमारे ही खेत पर पलकर हमीं से चालाकी चल रहे हैं! हुँह, कितनों को देख लिया। अब इन्हें भी देख लूँगा। इनका गरूर मिट्टी में न मिला दिया तो मेरा नाम किसुन नहीं।'

'नमस्ते डाक्टर साहब, आपके गाँव में आये महीनों गुजर गए मगर आज तक आपने हमारे घर पर पधारने की कृपा नहीं की—आखिर यह सितम है या करम ? राह चलते या किसी के घर पर जरूर हम मिलते रहे मगर मेरी ऐसी कौन-सी गलती रही कि आप हमारे यहाँ आने से कतराते रहे ?'—डाक्टर प्रसाद के आते ही नरेन्द्र ने कहा ।

'वाह-वाह ! मुझे शर्मिन्दा न करें । गलती केवल मेरी नहीं—हम दोनों की है । बिलट्टू से पूछ लें, जब कभी भी मैं यहाँ आपसे मिलने आया, आप घर से बाहर रहे । आप भी जरूरत से ज्यादा 'बिजी' और वही हाल मेरा भी—फिर जमकर भेंट कैसे हो ?'

'क्या बिलट्टू, यह सही बात है ? '

'जी हाँ, डाक्टर साहब कई बार आए । मैं ही आपसे कहना भूल गया ।'

'तो आइए, बैठिए डाक्टर साहब, हम दोनों ने गलती की । मगर अब ऐसी भूल न होगी । हम मिलने के पहले अपना प्रोग्राम तय कर लिया करेंगे ।''''कहिए, अस्पताल की क्या हालत है ?'

'उसकी हालत न पूछिए। बोर्ड का अस्पताल—घोड़ा अस्पताल से भी बदतर। न कोई सामान है और न कोई दवा। बस, पानी घोलकर दे दीजिए, या भभूत दीजिए। काम करने में मन नहीं लगता। साल में एक बार ग्रांट आएगा और उसके लिए भी सैकड़ों बार शहर दौड़िए। साहब, माफ करेंगे, कहीं कोई काम-वाम नहीं हो रहा है। सभी दिन काट रहे हैं और किसी भी तरह कुछ पैसा बन जाए, इसी फिराक में लगे रहते हैं! साहब, अंधेर है—अंधेर। यह तो सोहन साह के यहाँ कुछ पेटेंट दवाइयाँ मँगवाकर हमने रखवा दी हैं कि कुछ काम चल जाता है नहीं तो अस्पताल में मक्खी मारने भी कोई नहीं आता।''''मगर क्या बताऊँ, सबकी वही हालत है—जहाँ एक पैसा मिलने लगा कि ब्लैक करने लगा—सोहन भी एक का चार दाम वसूल करता है। बेचारे मरीज क्या करें—दाम ज्यादा न दें तो जान गँवा दें। ड्रग कंट्रोल नाम की कोई चीज यहाँ नहीं है''''।'

'यहीं क्या, कहीं भी नहीं है। अब तो दवा की जगह रंगीन पानी बिक रहा है। जाली दवाओं ने तो ऐसा खतरा खड़ा कर दिया है कि कुछ न पूछिए। भगवान ही मालिक।'

'जी हाँ, आप ठीक कह रहे हैं। अब तो हालत यह हो जाती है कि पेंसिलिन देते जाइए और कोई असर ही नहीं। कभी-कभी तो बेहद 'हेल्पलेसनेस' महसूस होती है। मरीज आँख के सामने मरने लगता है तो तुरत-तुरत दवाइयों को बदलकर यह देखना पड़ता है कि दवा असर कर रही है या नहीं। आदमी की जान से ट्रेड करना अब हमारी सभ्यता की निशानी होती जा रही है।'

'अजी साहब, यही खेल तो रात-दिन मैं देख रहा हूँ। पैसे के लिए ठीकेदार और हमारे ऑफिस के मुलाजिमों ने साँठ-गाँठ करके अमौना ताल के अंचल में बसे हुए किसानों को तबाह कर दिया। बाँध पर मिट्टी ठीक से नहीं डाली—बाँध शुरू बरसात में ही बह गया और स्वर्ग-आसरे खेतों में आबपाशी का कोई इंतजाम न होने के कारण सारी फसल मारी गई। अब बेचारे किसान भूखों मर रहे हैं मगर इनके कानों पर जूँ नहीं रेंगती। आदमी अब आदमी का लहू पी रहा है। आज हमारी यह हालत हो गई!'

'हाँ, यह तो आपके ऑफिस का खुला 'स्कैंडल' है। शाम को समय बिताने का एक खासा अच्छा मसाला पेश कर देता है आपका दफ्तर। जरा अभी जाकर नबी मियाँ की दूकान या बेनीमाधव या पाठकजी के दालान पर जमी मजलिस की गुफ्तगू सुनिए। मजा आ जाएगा। जो इस जाल के अन्दर हैं और जो इस जाल के बाहर हैं—सभी इस बहसा-बहसी में आनन्द ले रहे हैं। बस, यहाँ तो शाम काटने या रात काटने का मसाला चाहिए—यह एक अच्छा मसाला मिल गया। मगर अब एक नए मसाले की भी तलाश है। एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा—एक ताँता लगा रहना है। निकृष्ट, अपाहिज ये लोग!'

'डाक्टर साहब, मुझे हैरत होती है यह तमाशा देखकर। कोई भी तनिक सोचने को तैयार नहीं कि आखिर हम किधर बहे जा रहे हैं—क्या कर रहे हैं! देश तो उनके सामने नगण्य है।'

'अजी साहब, आपने भी खूब कहा! यहाँ देश की कौन परवा कर रहा है! देश जाए चूल्हे-भाड़ में! सबको अपनी-अपनी पड़ी है—सब अपने स्वार्थ के चलते दूसरे का लहू पी जाने को भी तैयार बैठे हैं।'

'मैं तो टूरिंग अफसर हूँ। रात-दिन देहात में घूमना पड़ता है। वहाँ की हालतें बयान करूँ तो जाने कितनी रातें कट जाएँ.....'

'देहात-देहात घूमकर मरीज देखना—मेरा भी तो ऐसा ही काम है—कभी इक्के पर तो कभी घोड़े पर, कभी साइकिल पर तो कभी पैर-गाड़ी पर। यह तो रोज आँखों से देख रहा हूँ।'

'हाँ, ठीक है। मगर इन खेलों के पीछे शासन का क्या हाथ है—यह जानकर आप आश्चर्यचकित हो जाएँगे। अभी हाल ही मैं एक मुसहर की बस्ती से लौटा हूँ। चाँपाकल का पैसा जो 'सैंक्शन' हुआ था उसका ऐसा दुरुपयोग हुआ है कि आँखों से लहू उतर गया। पानी बिना औरत-बच्चे सभी तड़प रहे हैं, मगर ठीकेदार किसी तरह एक कल गाड़-गूड़ कर चलता बना। उसे सरकार से पैसा मिल गया, अब पानी निकला या नहीं, यह तो खुदा जाने! और मजा यह कि जब मैं कोई कार्रवाई करने जाता हूँ तो सब मुझे ही नसीहत देने लगते हैं—सरकारी काम है, पुराना बी० डी० ओ० जाने; आप इसमें क्यों माथापच्ची कर रहे हैं? बीती ताहि बिसारिये, आगे की सुध लेय! मगर मैंने तो मामला आगे बढ़ा दिया है—देखा जाएगा।'

'तो आपने यह अच्छा न किया। सभी आपके दुश्मन बन जाएँगे और मैं खूब जानता हूँ, सब 'इनक्वायरी' आजकल टाँय-टाँय-फिस हो जाती है।'

'तो क्या डॉक्टर साहब, मैं भी यह 'लूट' देखकर चुपचाप बैठा रहूँ? मुझे यह गवारा नहीं।'

····कि कम्पाउंडर बाबू लालटेन लिये दौड़ते आते दिखाई पड़े।

'चलिए, मेरी रात आज जगरम में कटी।'

'कैसे ?'

'देखिए, कम्पाउंडर बाबू दौड़ते चले आ रहे हैं। जरूर कोई सीरियस केस आ गया।···कहिए, क्या बात है ? इस तरह हाँफते हुए कहाँ से दौड़े चले आ रहे हैं ?'

'दो लाशें तथा तीन खून केस अभी-अभी अस्पताल में आए हैं। चौकीदार भी साथ-साथ आया है।'

'क्यों, कहाँ मार हुई ?'

'बाबूगंज में।'

नरेन्द्र चौंक पड़ा—'आखिर बात क्या हुई ?'

'कुछ न पूछिए सरकार ! बाबूगंज के ठाकुर आज के नहीं, जमाने के लंठाधिराज हैं और उधर चमारटोली के चमार भी बड़े लुच्चे हैं। सुना—कल ही से चमार की एक लड़की गायब थी। किसी कटनिहार की लड़की थी। इसी में दोनों तरफ से तनातनी हो गई। लाठी-भाला-बर्छा सब निकल गया। बाबुओं के सामने भला चमार ठटें—दो-चार लाठी चली ही थी कि दलगंजन सिंह का बेटा भाला लिये पिल पड़ा। बड़ा जोशीला जवान है सरकार ! सारा इलाका थर्र मारता है उससे। बस, दो लाशें गिरीं और सभी भाग चले। चमारों की बिसात ही कितनी ! मुफ्त में हलाल हो गए।'

'तो चलिए, दोनों लाशों को पोस्टमार्टम के लिए शहर भेजिए। गोधन साह के यहाँ से पेट्रोमैक्स मँगाइए तो घायलों की मरहम-पट्टी की जाय। सारे गाँव में बिजली लग गई बी० डी० ओ० साहब, मगर अस्पताल में अभी तक बिजली का 'सैंक्शन' भी नहीं आया। मरीज रात भर ढिबरी जला कर तो जी लेते हैं मगर खून के केस में क्या किया जाय? आप भी देख लें मेरी परीशानियाँ। खुदा मालिक!'

डाक्टर साहब दो खिल्ली पान मुँह में डाल सुरती चखते हुए चलते बने और नरेन्द्र की मजलिस आज रात इतने पर ही टूट गई।

'सोनपति की माँ ! सोनपति कहाँ है—कहीं दिखती नहीं....।'

'आती ही होगी....।'

'फिर वही बात ! मैंने तो तुमसे कह दिया था कि उसे साथ-साथ लाना। आज बनी बाँटते-बाँटते काफी देर हो गई थी। इसलिए मैंने तुम्हारे कान में आकर झट कह दिया—किसुना यहीं चक्कर लगा रहा है—अँधियारी घिरती आ रही है—कहीं किसुना घात न कर बैठे !'

'तुम बेकार बराबर डरते रहते हो। कहीं कुछ न होगा....।'

'तो वह रह कहाँ गई ?'

'भई, हमारे साथ ही चली थी—आगे-आगे हम, बीच में सोनपति, फिर घनिया और उसके बाद रमापति की माँ, भगजोगनी....। भला वह रुकेगी कहाँ ! तुम दिशा-फराकत हो आओ, मैं अभी घनिया के यहाँ से आती हूँ, वहीं वह अक्सर बैठकर गप्पें लड़ाती रहती है।'

घुरफेंकन को चक्कर आ रहा है। किसी अदृश्य आशंका से जी काँप उठता है ! मगर पत्नी के आश्वासन पर वह मैदान की ओर निकल पड़ा।

उधर किसुन ने अपने दल के लीडर बन्दूकी को बुलाकर चेताया—'बन्दूकी, घुरफेंकन की यह मजाल कि हमें रोज चरा दे ? मैं उसकी और उसकी पत्नी की चाल खूब समझता हूँ। मैं जहाँ सोनपति के करीब पहुँचता हूँ कि वे सतर्क हो जाते हैं और आपस में फुसफुसाने लगते हैं। यदि हम आपस में कहीं बात करते पकड़ जाते हैं तो बाद में वे सोनपति की बड़ी मरम्मत भी करते हैं। आज सोनपति ने मुझसे कुछ इसी तरह की बातें की। इन सालों की यह मजाल ! मैं भी मजा चखा देना चाहता हूँ। कोई ऐसा उपाय लगाओ कि मामला आज सध जाय।'

बन्दूकी कुछ सोचता चुप रहा।

'क्यों चेला !—चुप क्यों हो गए ?'

बन्दूकी फिर भी चुप।

'अजी, तुम्हारे लिए तो कोई भी काम मुश्किल नहीं।'

'तो आज एक काम हो। कटनी खत्म होने पर मैं हल्ला कर दूँगा कि आज पिछली बनी सब बँट जाए। इतना माल खेत में रखना खतरे से खाली नहीं। बस, इसी में रात हो जाएगी, तरेगन निकल आएँगे और आप अपना दाव मार लेंगे।'

'वाह बन्दूकी, वाह ! खूब सोचा ! बस, आज कर ही डालो।'—किसुन के मुँह से लार टपकने लगी।

'आप फिकर न करें—सोनपति को तैयार करके रखेंगे।'

'हाँ, वह तो मेरी जिम्मेवारी है।'

'ओ सोनपति ! देखो, कोई सुन न ले, जरा जल्दी इधर आ जा ।····
········रात में जब मैं सोटी बजाऊँगा तो धीरे से अपने गिरोह से सरक कर काका की छावनी की ओर बढ़ जाना । मैं उधर ही कहीं रहूँगा—फिर········।'

'ना-ना, मुझे डर लग रहा है ।'

'फिर वही डर ! मैं थोड़ी देर बाद खुद तुम्हें गाँव के सीवान तक पहुँचा दूँगा ।'

'ना····ना····।'

'अरी पगली, खेल न कर····देख, घुरफेंकन आ रहा है । मैं उस खलिहान में जा रहा हूँ । देख, जरा होशियारी से····।'

'भगत ! अब तो कटनी खत्म पर है । यह तो तुम्हारे ही मान का है कि इतना बड़ा यज्ञ पार लगा देते हो वरना इधर के कटनिहार तो सारे देह्चोर हैं । इतनी उम्र हुई मगर अभी भी तुम्हारी भुजा में कमाल की ताकत है ।'—बन्दूकी ने भगत की तारीफ करते हुए कहा ।

'सायरी माई की किरपा है—सब पार लग जाता है ।'

'आसमान की रंगत देख रहे हो न, बादल घिर रहे हैं और बूँदाबाँदी का भी डर है । और, खलिहान में गल्ला का ढेर भी देख ही रहे हो । आज बनी बँट जाना जरूरी है और माल घर के अन्दर हमें पहुँचा देना भी है । जमाना खराब है । इतना गल्ला मैदान में रखना खतरे से खाली नहीं ।'

'तो आज तो बहुत देर हो गई। बनी बाँटते-बाँटते रात हो जाएगी। अँधेरी रात। कल रखिए....।'

'नहीं-नहीं, किटसन लाइट मँगा लूँगा—सब भिड़ जाएँगे और जल्द काम निबटा लेंगे।'

'जैसी मालिक की मर्जी !'—भगत मान गया।

बन्दूकी को लगा कि पहला मैदान तो मार लिया।

भूखी जनता—आज अनाज मिल जाएगा—श्रम का फल मिलेगा—सभी नाच उठे। एक मुट्ठी अनाज के लिए जो झाड़ू से खेत बुहार-बुहार कर धान तथा गेहूँ की बालियाँ बीनते चलते हैं—उनके लिए इतना अनाज.... उफ....बहुत कुछ ! क्षुधा-शान्ति के लिए बहुत बड़ा साधन ! धूप से तप्त पृथ्वी के लिए आसमान का एक बूँद पानी ही सब कुछ है....उसका सर्वस्व।

सीटी बजी तो रामपति और धनिया ने कहा कि 'ओ मइया ! काका की छावनी का विषधर करैत ठनक रहा है। मेघ देखकर यह और भी ठनकता है। जल्दी-जल्दी निकल चलो।'

'सर पर बोझ लिये दौड़ा भी तो जाता नहीं है। और दौड़कर करूँ भी क्या—रास्ता कहीं सूझता है ? घुप्प अँधेरी रात, आसमान पर बादल, तरेगन भी छिप गए हैं और उस पर तीर-सी बेधती पछेया बयार। हाय राम ! अब क्या करूँ ?'

वह तेज चलने की कोशिश करती है तो आगे किसी से टकरा जाती है।

'दुर, सँभल कर न चलो !'

'धत्, सँभल कर कैसे चलूँ—भला कुछ सूझता है ?'

तब तक काका की छावनी के फाटक से सोनपति टकरा गई। अंधेरी रात में उसे कुछ भ्रम हुआ मगर फिर जगह पहचान गई। इस बीच सभी तितर-बितर हो गए। सोनपति जैसे ही अन्दर घुसी कि किसुन के अँकवार में चली आई। महीनों की साध पूरी हुई, वह तो जैसे दूध में नहा गई। उसका धप-धप गोर रंग····फिर जो····तु-तु-तु····त-त-त···तु-तु-तु करैत ठनका तो किसी ने मुड़ कर देखा तक नहीं। जान का खतरा ऐसा ही जो होता है !

····'मगर अब मुझे पहुँचा दीजिए। आपकी बात मैंने रख दी। मुझे बड़ा डर लग रहा है।····' —सोनपति ने अपने को किसुन के अंक से छुड़ाते हुए कहा।

'दुर पगली ! अभी आई नहीं कि जाने को तैयार हो गई ! अभी दरस-परस हो लेने दो तो पहुँचा दूँगा।'

'अरे बाप रे ! इतने में तो बाबू मुझे काट डालेंगे।'—वह सहम गई।

किसुन ठहाका मार कर हँस पड़ा। बिलकुल पागल की तरह। और निर्जन प्रदेश में वह अट्टहास प्रेत की आवाज की तरह गूँज उठा।

'फेंकू, अब तो तुम बड़े आदमी हो गए ! अब हमलोगों का साथ तुम्हें अच्छा न लगेगा। पाठक बाबा की किरपा से तुम्हें शराब की दूकान का लाइसेंस क्या मिल गया, रुपये का खजाना हाथ लग गया। अब खूब मजा मार। घसिअउरा काटने के लिए तो हमलोग हैं ही।'—डोमन ने चुक्कड़ में एक चुस्की लेते हुए कहा।

'मुझे लजवाओ नहीं डोमन भाई ! यदि तुमलोगों से अलग पाँति में बैठना था तो तुमलोगों को आज बुलाकर इस तरह खिलाता-पिलाता क्यों ? हम तुम्हारे हैं और बराबर तुम्हारे ही रहेंगे। लो, जल्दी करो, फिर चुक्कड़ भरो। क्या भगतजी, ठीक कहते हैं न हम ?'

'एकदम ठीक फेंकू भाई ! समय ऐसा आ गया है कि हम सबको मिल कर रहना है नहीं तो हम गए। कोई पूछेगा भी नहीं।' —भगत ने चुक्कड़ खत्म करते हुए कहा।

'बिलकुल ठीक कहते हो भगतजी ! सब मार हम ही लोग पर पड़त है। सब गरीबका के ही सतावत है—मगर बिना हमरे इनका काम भी न चलत है।' फेंकू ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा।

'ठीक है भइया, ठीक। रोपनी और कटनो बड़का के कौनो मेहरारू करिहें ना—पालकी कोई बाबू डोइहें ना—मगर भूखे मरब हम—लात-जूता सहब हम। भगतजी ! साँच कहतानी—शरीर गिर गया तो हम भूखों मरने लगे। यह तो दोनों नात रिक्शा चलाने लगे नहीं तो अब तक हम परलोक सिधारे रहते।'—नशे के सरूर में वह भाव-विह्वल हो उठा और आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे।

'जो कड़ा करो डोमन भाई, हमें मरते दम तक खटते जाना है—दीप वह जो सामने जल रहा है—देखते हो न, उसी की तरह जब तक तेल है और बाती है। समझ लो।'—भगत ने इतना कह कर बीड़ी सुलगाई। फेंकू ने आज डिबिया से सिगरेट निकाली तो डोमन आँसू पोंछते हुए कहने लगा—'लग गई शहर की हवा—ठाट बदल दिया तूने !'

'....मैं लुट गया....मैं बरबाद हो गया....पंचलोग मुझे बचाएँ.... बचा लो भाई....मैं तो मारा गया....हो....हो....हो !'—घुरफेंकन जार-जार रो रहा है और कुछ चमार समझाते-बुझाते उसे फेंकू के दालान में लिये चले आ रहे हैं। फेंकू का दालान बूढ़े और जवानों से भरा था। चमार-दुसाध-मुसहर—यानी पूरी हरिजन-मंडली जमी अपने तौर से जशन मना रही है। पाठकजी ने उनकी जाति को आज पहले-पहल शराब की दूकान दिलवा दी है। फेंकू है तो बड़ा होशियार मगर सबकी सद्भावना बटोरने को वह आज कुछ खर्च कर रहा है—इस उम्मीद में कि कल एक के चार आने लगेंगे।

घुरफेंकन को उधर से रोते आते देखकर भगत का माथा ठनका। वह झट खड़ा होकर पूछता है—'अरे, क्या हुआ ? ऐसी कौन-सी आफत आ गई ?'—वह भीड़ में दौड़ पड़ा और घुरफेंकन को छाती से लगा कर उसने कहा—'पागल न बनो घुरफेंकनजी, साफ-साफ कहें—बात क्या है ?···· किसी ने मारा आपको ?····किसी ने बनी का धान लूट लिया ?·····'

'नहीं-नहीं, भगतजी, मेरी आबरू लुट गई····बाबुओं ने मेरी इज्जत लूट ली····मैं तो मारा गया·····'—वह फिर रो पड़ा।

'घुरफेंकनजी, आइए, चल कर दालान में बैठिए, फिर सारी बात बताइए। रोने से और भीड़ बटोरने से कोई फायदा नहीं।'

'हाँ-हाँ, घुरफेंकन, रोओ नहीं····चलो, दालान में बैठकर सारी बात बताओ।'—डोमन उसे पकड़े दालान में लिवा लाया।

वह एक बार रोकर चुप हो चुका है। सारी मण्डली खड़ी-बैठी उसे बड़े ध्यान से सुन रही है—'इतनी रात बीत गई मगर अभी तक सोनपति का कहीं कुछ पता नहीं। मैं, उसकी माँ, और धनिया, घर-घर छान गईं मगर वह कहीं नहीं मिली। बिचारी कहाँ होगी ? कैसे होगी ?'—वह फिर रो पड़ा।

'यह बताओ, वह कब तक तुम्हारे या अपनी माँ के साथ रही ?'

'बाबूगंज से चलते ही हमलोगों से साथ छूट गया। हमलोगों के सर पर इतना भारी बोझा था कि हम दुलकी चाल चल रहे थे। अँधेरी रात, रास्ता भी ठीक से सूझ नहीं रहा था।'

'मगर हमने तो तुम्हें पहले ही चेताया था कि उसे बराबर छाप कर रखें।'

'भगतजी, चरगोड़वा बाँध कर रखा जाता है कि दुगोड़वा ?—आपने भी खूब कहा ···।'—डोमन ने तमक कर कहा ।

'मैं तो बहुत पहले से इसे कह रहा था कि बेटी ब्याह कर भेज दो मगर यह माने तब तो !'—फेंकू ने कहा ।

'भगतजी ! मैं कहाँ से इसे ब्याहता ? जूते का काम ठप्प पड़ गया था । बनिया-महाजन का कर्ज सर पर अलग लद गया है । यह तो इस साल कुछ खेत कमाने से, दोनों बेकत की मेहनत से कुछ बच जाता तो भाई-बन्धु को खिला-पिला कर इसको पारघाट उतार देता····मगर हाय रे मेरा करम !'····वह फिर दहाड़ मार कर रो पड़ा ।

'देखो, पागल न बनो । यह बताओ, फिर किसी ने उसे कहीं देखा या बाबूगंज से ही वह गायब हो गई ?'—भगत ने पूछा ।

'ना-ना, मेरी घरवाली ने धनिया के साथ उसे लगा दिया, दोनों ताल तक एक साथ आईं ; फुलकुँवरी भी साथ थी । मगर उसके बाद कैसे क्या हुआ—कोई कुछ नहीं बता पाता । ताल वाली छावनी से करैता का ठनकना सुनकर सभी भागीं और उसी भागदौड़ में सभी तितर-बितर हो गईं—फिर पता न चला, कौन कहाँ गया, कैसे भागा ।—'—वह चुप हो गया ।

'अब समझा ! खूब समझ गया ! किसुना ने उसे तालवाली छावनी में छिपाकर रख लिया । सब बंदिश पहले से ही बाँधी गई थी । जब बन्दूकी ने रात में बनी बाँटने की साजिश की तभी मैं समझ गया था कि आज कोई-न-कोई अकुआ हुआ । चलो, हो ही गया ।'—भगतजी फेंकू से आँखें मिला कर आँखों ही आँख कुछ बातें करने लगे और सारी मण्डली कुछ देर को

थिर हो गई। अगला कदम क्या हो—पंच-परमेश्वर की क्या राय होगी—यह जानने को अन्दर-ही-अन्दर कसमस करने लगी।

भगत आँख मूँदकर कुछ सोचता रहा, फिर भभक पड़ा—'भाइयो ! घुरफेंकन की इज्जत हमारी सबकी इज्जत है। चलिए, अभी रामभजन सिंह से फरिया लें। अगर हमारी बेटी को उनका बेटा ले गया है तो उसे ब्याह कर अपने घर रख ले, हमें कोई एतराज न होगा। उसे इज्जत दे, उसमें हमारी बेइज्जती नहीं होगी। मगर अगर वह हमारी बेटी को रंडी-पतुरिया समझते हों तो ठाकुर और छुटभैयों में ठन जाएगी। क्या हम इतने कमजोर हैं कि हमारी इज्जत कोई लूट ले ? जय सायरी माई ! जय सायरी माई ! जय बजरंग बली।'

जवानों ने लाठी ले ली और बूढ़ों ने पग्गड़ बाँधा और सभी आरी-आरी बाबूगंज की ओर बढ़ चले।

बलचनवा ने कड़क कर कहा—'भाई जिगना, जरा लाठी एकबार हवा में भाँज ले ताकि हाथ में ताकत आ जाय ! यहाँ रिक्शा चलाते-चलाते जाँघें तो तन गई हैं और हाथ कमजोर हो गए हैं।'

'फिकर न करो जिगना, बाबुओं को मजा चखा दूँगा। रोज अली हसन से पट्टा भाँजना सीखता हूँ और चमरटोली के अखाड़े में दंड-बैठक भी करता हूँ।'—धनिया का बेटा हिरामन उस अँधेरे में भी इतना कहकर लाठी भाँजने लगा।

'का रे ठेंगुआ, लाठी में खूब तेल लगा है न ?'

'फिकर न करो, मेरी लाठी तेल पोकर दोधारी तलवार को भी मात कर देगी।'

भगत घुरफेंकन को दिलासा देते हुए बोला—'देखो, तुम्हारे पीछे इतने लोग हैं। अब दिल बड़ा करो। आज हम ठाकुरों से फरिया कर छोड़ेंगे। तुमसे कहते न थे कि होशियार रहा करो, मगर हो तुम पूरे गोबर !'

'क्या कहें भगतजी, एक क्षण में सब हो गया। होनहार को क्या कहें !'

'होनहार कुछ नहीं है। सब अपनी बेवकूफी का फल है—भाई रे, जरा धावत चलो—रात काफी गिर गई है और आसमान में काले-काले बादल घिर आए हैं। पछुआ बयार हड्डी चीर रही है। तेज चलोगे तो जरा गर्मी आ जाएगी। सबों के पास खफीफ ही ओढ़ना है।'

आज चमारों का साथ दुसाध-मुसहर सभी छोटी जात के लोग दे रहे हैं। सभी समझ रहे हैं कि 'बड़का' उन्हें सता रहे हैं और आज उनसे सदियों के जमे हुए जजबात उनके सामने रखकर उनका समाधान ढूँढ़ेंगे। अब उनसे सहा नहीं जाता। इसीलिए कहा-सुनी करना चाहते हैं। आँखें नीची कर नहीं, आँखों को आँखों में मिलाकर बात करना चाहते हैं। आखिर हद की भी हद होती है। अब वे जान गए हैं कि उनके अन्नदाता ये बाबू नहीं, वे खुद हैं। यदि उनके हाथ में हसिया है और बाजू में उसे चलाने की ताकत, तो रोज उनकी खुशामद होगी। बाबुओं के हाथों को तो लकवा मार गया है। वे मुफ्त की रोटी खा रहे हैं।

छावनी के सामने उनकी बौखलाई हुई टोली रुकी और घरों की तलाशी ली मगर वहाँ कोई नहीं मिला। सब सुनसान यों ही पड़ा था।

'चलो-चलो घुरफेंकन, यहाँ अब तक छिपा थोड़े होगा—कहीं और चला गया होगा।'

'बाबूसाहब, होशियार ! होशियार ! पलटन आ रही है। घर से निकलिए !' —चिल्लाता बिन्दा गाँव में घुसा। जाड़े की रात—सभी अपने अपने घरौंदे में जाड़े से ठिठुरते छिपे पड़े थे। किसी ने उसकी आवाज सपने में सुनी और किसी ने डरकर अपने ओढ़ने में सर छिपाकर आँखें मूँद लीं। बिन्दा पागल की तरह अलख जगाता रामभजन सिंह के दालान में घुसा—पीछे-पीछे भूँकते हुए कुत्तों की जमात।

रामभजन सिंह घूर ताप रहे हैं। बगल में रामप्रताप सिंह, दलगंजन सिंह, उनका बेटा रामबहादुर सिंह और अनेकों सिंह तथा बन्दूकी भी बैठा है।

'ऐं, यह कैसी आवाज है ? ठहरो-ठहरो बन्दूकी, तुम तो बात करने लगते हो तो ट्रेन दौड़ा देते हो। देखो, इतनी रात गए बिन्दा क्या राग अलापता चला आ रहा है।'

बिन्दा दालान में हाँफता हुआ घुसता है और गिर पड़ता है। —'उठ, अरे सार, का आफत आ गइल बा कि एतना रात आके बेहोश हो गइले—उठ....' —दलगंजन सिंह ने डपट कर कहा।

'अरे मालिक, भाला निकालीं—भाला ! जल्दी करीं ना तो गाँव लुटाइल । ....चमारन के पलटन आ रहल बा । छावनी के नास कर देलन सन । किसुन बाबू के कुछ पता लागल ? उनकरे खोसे ऊ सब बिगड़ल बाड़न सन ।'

सभी सिंह गरज कर खड़े हो गए—'ओ, इन सालों की इतनी मजाल ! गाँव लूटने आ रहे हैं ? —इतनी रात गए—धोखा देकर ? बन्दूको, अभी दौड़कर जाओ और सबको खबर कर दो—बाहर चबूतरे पर सभी लोग जमा हो जाएँ । औरतों से कह दो कि अन्दर से किल्ली बन्द कर लें । दलगंजन, किसुना ने हमें बरबाद कर दिया । इतना समझाया मगर अपना बान कभी छोड़ता ही नहीं । देखो, बुढ़ापा में यह नई आफत ! यदि कड़ाई करता हूँ तो जमाना खराब है—क्या से क्या हो जाय और यदि मुलायम बन जाता हूँ तो ये बनिहार कपार पर चढ़कर मूतेंगे । किसुना साला—बेहूदा—कभी कुछ सोचता ही नहीं ।'

'चचा, इस समय तीन-पाँच न सोचिए—बाहर निकलिए । जान पड़ता है, वे खौफनाक हो गए हैं । पहले बचाव की तैयारी कर लें ।'

'हुँह, बचाव—मेरी बन्दूक में बराबर गोली भरी रहती है ।'

'चचा, आप बराबर आखिरी ही रास्ता अख्तियार कर लेते हैं । अभी हम लाठी निकाल लें, फिर भाला चमकेगा—साले सब भाग खड़े होंगे ।'

'तो चलो........'

चबूतरे पर बबुआनों का ठट खड़ा है। देखते-ही-देखते बबुआन टोला आदमियों से खमखम भर गया है। सामने खड़ी है चमारों-दुसाधों की पलटन। दोनों कतारें कुछ देर को चुप खड़ी हैं। एक अजीब पशोपेश—ऊमस। एक ओर बबुआनी ठट, दूसरी ओर चमारों का लट्ठ। ....फिर भगत ने आगे बढ़कर आवाज बुलन्द की—'बाबूजी, हम फरियाद करने नहीं आए हैं—बराबर के लिए फरियाने आए हैं—आखिर कब तक हमारी बहू-बेटी की इज्जत लूटी जाएगी, हम पर कब तक अत्याचार होता रहेगा ?'

बबुआनी टोली चुप।

'हमारी मिहनत पर आप ऐश कर रहे हैं और हमारे बच्चे दाने-दाने को मोहताज हैं—उनकी आबरू लूटी जा रही है ....!'

भगत की आँखों में आज एक अजीब चमक है। दरवाजे पर टँगी किटसन लाइट के सामने उसका खौफनाक चेहरा देखकर बबुआन टोली में खलबली मच गई है। भगत ने भी अब रंग बदल दिया ! वही भगत तो आज पचास साल से उनके खेतों से फसल काट-काट कर गल्ले का अम्बार लगाता रहा। उसके बाल-बच्चे, नाती-पोते—सारा कुनबा उनकी सेवा युगों से करता रहा—वह भी बदल गया तो जमाना जरूर बदल गया।... मगर वे नहीं बदले।

'चाचा, अब बरदाश्त नहीं हो रहा है। हमारा हाथ काँप रहा है—हटें—हमें आगे आने दें....'—बन्दूकी ने तमतमा कर कहा।

'अभी रुको बन्दूकी, जरा धीरज से....'—रामभजन सिंह ने उसे रोकते हुए कहा।

'चाचा, यद बुढ़वा जो न कहने को वह कह गया और आप गटर—

गटर सुनते रहे।'—बन्दूकी भीड़ में कूदना चाहता है। दो आदमी उसे रोके पकड़े हैं। फिर वह वहीं से चिल्लाया—'तुम्हारी बहू-बेटी रंडी-पतुरिया हो गई हैं तो इसमें हमारा क्या दोष ? तुम अपनी बेटी को रोको। छोट छोट ही होते हैं। अब हमारी बराबरी करना चाहते हो ? आया है बड़ी लाठी दिखाने। पुश्त-दर-पुश्त जूता सीते रहे—पालकी ढोते रहे—बनी पर पलते रहे—तुम्हें लाठी पकड़ने कब आ गया ! एकदम बिरवना ऐसा लग रहा है ! चल, हट, नहीं तो यहीं ठीक कर दूँगा !'—बन्दूकी चबूतरे पर ही से गरजने लगा।

दोनों कतारें बौखला उठीं। हिरामन की सोई पहलवानी जाग पड़ी और भगत तथा डोमन के रोकते-रोकते वह लाठी लेकर गरजता आगे बढ़ा कि रामबहादुर भाला चमकाते चबूतरे से नीचे कूद पड़ा। कोहराम मच गया। हिरामन ने जैसे वार करना चाहा कि रामबहादुर का भाला उसकी आँत चीरता उस पार निकल गया। उसके गिरते ही ठेगुआ की लाठी रामबहादुर की पगड़ी पर बजी। उसका माथा झनझना गया। मगर उसे पीछे कर बन्दूकी आगे बढ़ा और अपने भाले से उसे भी ढेर कर दिया। दोनों ओर से सिर्फ 'मारो-मारो' की आवाज—लाठियों के लाठियों से बजने की आवाज—जान गई—बाप रे—बचाओ-बचाओ की आवाज........

बुढ़िया आँधी जैसे अपने पूरे वेग से आकर पेड़ों को गिराकर और कितने घरों का छाजन उड़ाती हुई चली गई हो वैसी ही ध्वंसात्मक

निस्तब्धता व्याप रही है। सारे गाँव में मुर्दनी छा गई है। ऊपर से तो सभी दिखा रहे हैं कि खूब मारा—यह मारा—वह मारा—सारन का बान छुड़ा दिया, मगर भीतर-ही-भीतर हलचल मची है।

रामभजन सिंह का दालान ठसाठस भरा है। मार का लेखा-जोखा हो रहा है। लाठी की चोट से जो कराह रहे हैं उन्हें मरहम-पट्टी भी की जा रही है। इधर का कोई मरा नहीं मगर उधर दो-दो खून—कई एक भाले से जख्मी भी। इसकी परीशानी हरएक के चेहरे पर दिख रही है। कल सुबह क्या होगा? फिर क्या होगा? एक भी लाश उनके हाथ न लगी। चमार अपने कंधे पर लादे थाना चले गए।

रामभजन सिंह तथा दलगंजन सिंह एक कोठरी में किवाड़ बन्द कर फुसुर-फुसुर बातें कर रहे हैं—'दलगंजन, अभी दारोगाजी से मिल आओ। मामला पटा दो। फिर किसी बात का डर नहीं। भाले-लाठी की मार को चाँदी की मार ही बचा सकती है। जो घूस नहीं लेता वह बड़ा खतरनाक होता है; जैसे—तुम्हारा बी० डी० ओ०। मगर रामप्रसाद दारोगा से काम कराना एकदम आसान है। पहले मोल-मोलाई कर लो—फिर काम बन गया समझो।....देखो, नोट का बंडल कमर में ठीक से बाँध लो। पाँच जवान साथ ले लो और अभी निकल भागो। ठंढक बढ़ गई है, मगर कोई बात नहीं। मेरी रजाई भी ओढ़ लो।....और हाँ, सामने से न जाना—जमादार साहब के यहाँ ठहर जाना और वहीं से खबर भिजवाना।'

'चचा, और अस्पताल में भी तो किसी को भेजिए।'—दलगंजन सिंह ने थूक घोंटते हुए कहा।

'बेवकूफी की बात न करो। वह डाक्टर तो बी० डी० ओ० का भी

चचा है। भला वह कुछ सुनेगा ? पैरवी करने जाओगे तो उस पर और उलटा असर पड़ेगा। एक बार नहीं, सैकड़ों बार उसे अजमाया गया—वह बराबर अपनी बात पर अड़ा रहा। वह तो महा खतरनाक आदमी है। नाम न लो उसका।'

दलगंजन सिंह चाचा का आशीर्वाद ले थाने की ओर बढ़ा। जिन्दगी में जाने कितनी बार वह मार करा चुका है। उसे कुछ भी नया न लगा।

आज थाने में मध्यरात्रि के उपरान्त भी बड़ी चहल-पहल है। जैसे दिवाली मनाई जा रही हो। सब किटसन लाइट जला दिए गए हैं और सभी क्वार्टर में बड़ी सरगर्मी दिख रही है। लक्ष्मी का आगमन होनेवाला है इसलिए सभी प्रफुल्ल नजर आ रहे हैं। खून का केस—खून का ! और वह भी एक नहीं—दो-दो। मजा आ गया। या अल्ला—या मौला ! तू देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। उसमान खाँ जमादार खुदा को याद करते हुए दारोगाजी के यहाँ चलने को होता है कि दलगंजन सिंह अन्दर घुसते हैं।

'अच्छा, आ गए ठाकुर साहब, बस, आपका ही इंतजार था ! चमार सब जुटे हैं। वह जो भगत चमार है न, जो अपने को बड़ा काबिल समझ रहा है—एफ० आई० आर० देने को हल्ला मचा रहा है मगर हमलोग आपका ही इन्तजार कर रहे थे। मालूम है न, एक नहीं—दो-दो खून हुए हैं, दो-दो। एक में आपके बेटे का ही नाम दे रहे हैं।'—वह एक आँख बन्द कर, ठठाकर हँस पड़ा। उसकी सारी देह खुशी से नाचने लगी और उसकी खसखसी दाढ़ी भी हिलती हुई हँस पड़ी जैसे।

बेटे का नाम सुनते ही दलगंजन सिंह का कलेजा एक बार दहल उठा। उतनी सर्दी में भी पसीना छूट गया।

'खाँ साहब, अब बाबूगंज के बबुआन की इज्जत आपके हाथ में है। कोई तरह रास्ता निकालें....।' —दलगंजन सिंह आज जीवन में पहली बार गिड़गिड़ाते हुए दिखे। उनके बेटे की बात न होती तो ऐसे पागल वे न होते।

'मामला बहुत टेढ़ा है, मगर आप घबड़ाएँ नहीं—मैं अभी दारोगाजी से बातें कर आता हूँ। आप यहीं छिप कर बैठें।'

उसमान खाँ ऑफिस की ओर बढ़ा। रामप्रसाद दारोगा बड़े ठाट से भगत से बयान ले रहा है। सारी बातें सुनकर वह क्या लिख देता है—यह तो वही जाने। बगल में उसमान खाँ सिगरेट का कश लेता खड़ा हो जाता है।

'कहिए खाँ साहब ! खैरियत तो है।'

'जी हाँ, मगर जवार की ऐसी हालत हो तो खैरियत कैसे हो ? —क्या जो भगत, आज यह क्या करिश्मा हो गया ?'

'छोटे दारोगाजी, कुछ न पूछें। हम पर बड़ा अत्याचार हो रहा है। हमारे बाल-बच्चे बेमौत मारे जा रहे हैं। अब इंसाफ आपके हाथ में है। इंसाफ होना चाहिए।'

'तुम खातिर जमा रखो। यहाँ से हम सब ठीक-ठीक रपट कर देंगे—इंसाफ तो जज करेगा। हम इंसाफ के मालिक नहीं।'

भगत की आँखें गीली हैं—उसके साथियों का भी हाल बेहाल है। आज जिन्दगी में पहली बार थाना का तमाशा देखने को मिल रहा है। एक सर्वथा नई अनुभूति।

रामप्रसाद और उस्मान खाँ दूसरे कमरे में चले जाते हैं।

'कहिए, क्या बात है ?'

'हुजूर, सोने की चिड़िया जाल में फँस कर आ गई है ।'

दारोगाजी की बाँछें खिल आती हैं । 'बहुत दिनों बाद बाबूगंज वाले फँसे हैं । तगड़ा रकम वसूलो ।'

'हुजूर ही कहें, कितना ।'

'दस हजार से शुरू करो—देखो, जितना ज्यादे में मामला पट जाय ।'

जितनी देर उस्मान खाँ दारोगाजी के यहाँ रहा—दलगंजन सिंह का बुरा हाल होता रहा । कभी बैठते, कभी खिड़की से बाहर झाँकते ।

'ठाकुर साहब, मामला बड़ा संगीन है । चमारों की जमात दारोगाजी को घेरे हुए है । बस, आप ही के लिए दारोगाजी कुछ लिख नहीं रहे हैं । देखिए, जमाना बड़ा खराब है । बहुत सँभल कर चलना है । नीचे से ऊपर, जितने थाने के मुलाजिम हैं उन्हें कुछ-न-कुछ चटाना है । दस हजार के नीचे काम न चलेगा ।'

दस हजार रकम सुनते ही दलगंजन सिंह का माथा डोल गया । उफ, किसुना ने हम सबको तबाह कर दिया । कहाँ से कहाँ यह नई आफत आ गिरी ! अभी अस्पताल-कचहरी बाकी ही है ।

'चुप क्यों हो गए ठाकुर साहब ? जल्दी तय करें वरना हम उनसे बात शुरू कर देंगे । उनकी तरफ से भी वह पानी मिला कर शराब बेचने वाला नया साहूकार तोड़ा खोलने को तैयार है—वही कांग्रेसी पण्डित का चेला—फेंकू दुसाध ।'

फेंकू का नाम सुनते ही दलगंजन सिंह काँप गए।

'नहीं-नहीं, खाँ साहब, आप चमार-दुसाधों से क्यों पैसा लेंगे जब हम खातिर करने को तैयार हैं। भला वह देंगे ही क्या ? लें, यह पाँच हजार की गड्डी रख लें। फिर आपकी खिदमत में हम बराबर खड़े रहेंगे। जब जो कहेंगे—जितना; मगर इस समय इज्जत रख लें—रामबहादुर की जान बचा दें।'

'ठाकुर साहब, मैं भिक्षा नहीं माँग रहा हूँ—भिक्षा आप माँग रहे हैं। यह पाँच हजार—छि: !'—वह गड्डी वहीं फेंक देता है।

'आप अपने बेटे की जान से भी मोल-मोलाई कर रहे हैं। चलिए-चलिए, यह अच्छा खेल है !'

'आज इतने पर ही।'

'आज-कल कुछ नहीं। यदि आपको अपने बेटे की जान प्यारी है तो तीन हजार और दें वरना हमारा और आपका रास्ता दूसरा।'—वह समझ रहा था कि बेटे के नाम पर ही पैसा यह फेंक देगा नहीं तो फिर फँसेगा नहीं।

'तो चुप क्यों हो गए ? चालान कर दूँ ?'

'नहीं-नहीं, तीन हजार अभी गाँव से और मँगाता हूँ – आप अपना काम करते रहें।'

वह रो पड़े और छोटे दारोगाजी के पैरों पर गिरने को हुए कि खाँ ने उन्हें उठा लिया—'आप भी इतने बेहाल क्यों हो रहे हैं ? आपने कितने उतार-चढ़ाव देखे हैं। गर्दिश आती ही है, मगर शेर-सा उसका सामना करें। मैं नजराना रख लेता हूँ, मगर सिर्फ आठ हजार से ही काम न चलेगा—

पैसे का पूरा इंतजाम रहे। देखिए, अभी आए पाँव लौट जाइए—दुलकी चाल—चमारों के घर पहुंचने के पहले, और पुआल में तथा छावनी में आग लगा दें। कुछ खलिहान भी जल जाय तो कोई मुजायका नहीं। तुरंत थाना लौटकर अगलगी का केस और उसे बचाने में चमारों से मार और अपनी जान बचाने में भाला निकल जाने की बात सब आकर सनहा में लिखा दें····और हाँ, यह तीन हजार भी लेते आएँगे तभी मैं कुछ लिख सकूँगा। भोर की गाड़ी से शहर चले जाएँ—वहीं पोस्टमार्टम होगा। डाक्टर सुलतान हमारा अपना आदमी है—काम बना ही समझें। बस, पैसा बिछा दें। उसे भी इसी साल अपनी बेटी की शादी करनी है····।'

उस्मान खाँ ने इतना कहकर दूसरी सिगरेट जलाई। दलगंजन सिंह को सब्जबाग और उजाड़बाग दोनों नजर आ गया। बस, उसी रात अगलगी की पूरी साजिश कामयाब करने को वह अपने साथियों सहित बाबूगंज की ओर दौड़ पड़े।

चमरटोली में आज बड़ी पस्ती है। जान पड़ता है भूत रो रहा है। हिरामन और ठेंगुआ की मौत से सभी टूट-से गए हैं। ऐसे सजीले जवान और उनका असमय ही ऐसा दुखद अन्त ! कितने बूढ़े और जवान घायल हो अस्पताल में भी पड़े हैं। बाबुओं का तो कुछ भी न हुआ। सिर्फ कुछ खलिहान और छावनी जली ; मगर इधर तो सर्वनाश। हाहाकार। मौत का अट्टहास। घुरफेंकन ने तो खाट पकड़ ली है। किस्मत की मारी सोनपति उसी रात घर लौट आई ; मगर जब से आई है, सबकी आँख की किरकिरी हो गई है। कोई भी उसे फूटी आँख देखने को भी तैयार नहीं। सभी कहते कि इसी छिनाल के चलते यह कारड हो गया। वह घर में छिपी रात-दिन रोती रहती। खेल-खेल में तूफान आ गया।

'घुरफेंकन जी ! ओ घुरफेंकन जी ! अरे भाई, किधर हो ?'—पुकारता भगत घर में घुसा।

'यहीं हूँ—चले आओ····।'

'क्या हाल है ? सुना, खाट पकड़ ली है। इतना दिल छोटा करना ठीक नहीं। हिम्मत से काम लो।'

'क्या काम लें—हम सब लुट गए। सारे काण्ड की जड़ सोनपति हो गई है। उसके लिए ताना सुनते-सुनते कलेजा चलनी हो गया है। अब मैं आदमी की सूरत से भागता हूँ—कहीं कोई कुछ कह न दे !····और, कुछ हाथ भी तो न आया। पुलिस के हाथ में आकर सभी जैसे जाल में फँस गए।'

'यह तो ठीक कहते हो—बात का बतंगड़ हो गया। मामला यह रुख ले लेगा—यह मैंने सपने में भी नहीं सोचा था।····क्या बताऊँ—जोश में आकर हिरामन और ठेंगुआ ने सारा खेल खराब कर दिया। अपनी जान भी गँवाई और हम सबको फँसा भी दिया। बाबू सब तो मार करने को बहाना ढूँढ़ रहे थे। जहाँ उन्हें एक बहाना मिला—बस, उन्होंने आग लगा दी। दारोगा ने तो हमें बड़ा धोखा दिया। ऐसी उमीद मुझे उनसे न थी। रुपया खाकर सारा केस ही उलट दिया। दियासलाई की एक तीली से भी हमें भेंट नहीं, मगर अगलगी के केस में हम सभी फँसा दिए गए। उस रात थाने से लौटते बाबूगंज के खलिहान तथा छावनी से हू-हू करती आग की लपट देखकर मेरा तो माथा ठनक गया—लो, यह कौन नई आफत ! मगर इतनी दूर मैं सोच न सका। आज फेंकू ने जब दारोगा की रिपोर्ट का हाल सुनाया तो पैर तले से मिट्टी सरक गई।'

'उस कमीने का नाम न लो भगत। खूब पैसा बना रहा है। पानी

मिलाकर पीपा का पीपा शराब बेच रहा है मगर उस रात दारोगा को देने के लिए पैसा माँगने गया तो साफ इन्कार कर गया—एक पैसा नहीं। अभी तो दो-चार ही गाँहक आते हैं। ऊपर से आबकारी वाले रात-दिन नोचते रहते हैं। वह उस दिन कुछ भी मदद दे देता तो आज हम इतने बेहाल न होते।'

'अरे, वह तो दोमुँहा साँप है—साँप। इधर भी बोलता है, उधर भी। पैसा कमाकर वह अब हमसे दूर हो गया। चोट्टा साला।'

कुछ देर को सारा वातावरण शांत हो गया। घुरफेंकन खाट पर पड़ा-पड़ा फूस का छाजन निहार रहा है और भगत दूर—बहुत दूर—निर्जन खेतों की ओर यों ही देख रहा है। अन्दर सोनपति सुबुक-सुबुक कर रो रही है। वहीं उसकी माँ काठ की मूरत की तरह चुपचाप बैठी है। कुछ समझ नहीं पा रही है कि क्या से क्या हो गया! अब क्या होगा—अब क्या किया जाए—सोनपति किस घाट जाएगी—उसका क्या होगा—यही चिंता उसे खाए जा रही है। किसुना तो धनी का लड़का—आवारा-लम्पट—अपना काम निकाल चलता बना; मगर यह बिचारी तो माथे पर कलंक का टीका लगाए अब किधर जाए—कैसे जाए! घर से निकलना दूभर हो गया है। ऊँच-नीच सोचने की उसमें क्षमता होती तो ऐसी गलती कभी न करती; मगर हाय, अब क्या? —यही 'क्या' प्रश्नचिह्न बन उस झोपड़ी में नाच रहा है—परन्तु…………

''''''''कि भगत ने कहा—'घुरफेंकन, पास के पैसे सब खर्च हो गए। अब गाँव जाकर महाजन की हथजोड़ी कर कुछ पैसे लाना जरूरी है—वरना जब कचहरी में रोज दौड़ना पड़ेगा तब कैसे काम चलेगा ? इसलिए आज रात मैं घर जा रहा हूँ। बड़का पुल पर बस पकड़ कर निकल जाऊँगा। बाल-बच्चों को तड़के ही कटनिहारों के जत्थे के साथ-साथ गाँव रवाना कर दिया। हलगुलान से इस समय यहाँ टिकने को कोई तैयार नहीं। अगलगी में उनमें से भी कितने चालान हो गए हैं। जिनसे-जिनसे पुराना अखज था, बाबुओं ने मौका देखकर फँसा दिया। ठीक है, मनमानी कर लें लोग। अगले साल कटनी के समय न बुझाएगा। सारी फसल खेत में ही झरकर गिर जाएगी। अब हमलोग अगले साल दूसरा इलाका पकड़ लेंगे। लोग तो हमें खुशामद कर अपने इलाके में बुलाते हैं। हम भी इन्हें मजा चखा देंगे''''''

बूढ़ा भगत इतना कहकर फिर जोश में गुर्रा उठा—जैसी बुझी हुई आग उटकेर देने से फिर सुलग जाती है।

'''''''''खैर, इस समय मैं यही कहने आया हूँ कि आज रात सोनपति हमारे साथ जा रही है और आज से वह हमारी हो गई। हमारे घर की रौनक।'

'यह क्या कह रहे हो भगत ! हँसी तो नहीं कर रहे हो ? मरे हुए पर एक लात और तो नहीं जमा रहे हो ?—ना-ना—ऐसा न कहो—मैं बहुत सताया जा चुका—अब मेरे घाव पर नमक न छिड़को।'

वह जार-जार रोने लगा।

'नहीं-नहीं घुरफेंकन, मेरी बातों पर विश्वास करो। वह अब मेरे

घर की रौनक होगी। रामू से उसकी शादी कर दूँगा। वह फिर अपनी खोई हुई दुनिया पा जाएगी। यहाँ से दूर—बहुत दूर—वह फिर एक नया संसार बसा लेगी। यहाँ तुम उसकी जिन्दगी बरबाद कर दोगे। सुना, उसका मामला पंचइती में जा रहा है। वहाँ वह किसी लूल्हे बूढ़े से बाँध दी जाएगी। यह मुझे बरदाश्त नहीं। फूल-सी कोमल तुम्हारी बेटी को पञ्च-परमेश्वर कीचड़ में सान देंगे। उसे मेरे साथ जाने दो। मैं उसका जीवन बना दूँगा। उसे जीवन दान देना अब तुम्हारे बूते की बात नहीं........।'

घुरफेंकन खाट छोड़कर खड़ा हो गया। न जाने उसमें कहाँ से स्फूर्त्ति आ गई।—'तुम सच कहते हो भगत—सच ?'—उसकी आँखें फिर भर आईं।

'हाँ-हाँ, सच ! तुम इतमीनान रखो, सोनपति को मेरा परिवार अपना लेगा। हम कबीरपंथी कभी पोंगापंथी नहीं होते कि कहें कुछ और

'करनी मीठी खाँड़ सी, करनी विष की लोय।'

हमारा मन साफ है और हम तो समझते हैं कि—

'न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।'

घुरफेंकन उसके पैरों पर गिरने को हुआ कि भगत ने उसे गले से लगा लिया—'ऐसा निरीह न बनो और सोनपति को भी बुरा-भला न कहो। गलती सबसे होती है मगर गलती को सही बिरले ही कर पाते हैं।'

भाव-विह्वल हो घुरफेंकन उसके गले से लिपट हों-हों रोने लगा। उसे कभी भी भरोसा न था कि भगत उसको उबार देगा और सोनपति का भी

उद्धार कर देगा। एक कलंकिनी को वह सहर्ष स्वीकार करने को आतुर है। पंचों की पंचइती की भी अवहेलना करने को तैयार है—सारा कलंक अपने माथे पर लेकर धो देने को तैयार है और गाँव के सारे ताने अपनी छाती के भीतर दबाकर सह लेने को तत्पर है—वह अजीब आदमी है—बिल्कुल अनोखा।

इस प्रेम-मिलन को सोनपति की माँ बड़ी अचम्भित हो देख रही है। सोनपति की आँखों के आँसू जैसे सूख गए हैं। वह चुपचाप एक टक सामने खेलती हुई गिलहरी को देख रही है—जैसे, एक तूफान के बाद विरामचिह्न।

एतवार का दिन। नरेन्द्र आज पूरा 'रेस्ट' ले रहा है। दफ्तर की झंझटों से अपने को मुक्त करके डाक्टर साहब के क्वार्टर में आ गया है। उसका आज दिन का खाना भी डाक्टर साहब के यहाँ ही है। डाक्टर साहब की बीवी परदानशीं औरत हैं। वह महरी के साथ चौके में भिड़ी हैं। डाक्टर साहब का एक मात्र किशोर पुत्र रमेश नरेन्द्र को अपने बालसुलभ वर्त्तालाप में बझाए हुए है। डाक्टर साहब अभी अस्पताल में किसी रोगी के उपचार में फँसे हुए हैं।

'क्यों जी रमेश, तुम्हारे बाबू एतवार को भी अस्पताल जाना बन्द नहीं करते ?'

'उनके लिए एतवार-सोमार सब बराबर। जहाँ छुट्टी मिली नहीं कि अस्पताल में घुस जाते हैं। एक ही हाते में अस्पताल और क्वार्टर दोनों हैं। इसीलिए अम्मा से उन्हें रोज झगड़ा होता। अम्मा कहतीं कि शहर के किसी अस्पताल में बदली करा लें। यहाँ अस्पताल के हाते में ही रहने से रात-दिन काम में फँसे रहते हैं। आपका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है—शहर

भाग चलिए।'''मगर बाबू कहते कि इस गाँव से मुझे बड़ा प्रेम है। जब तक सरकार रहने देगी—हम रहना चाहेंगे।'

नरेन्द्र हँसा—'तुम्हारी अम्मा को सिनेमा-बाजार, खरीद-फरोख्त का मौका नहीं मिलता होगा—इसीलिए वह यहाँ से भागना चाहती होंगी। मगर, तुम बताओ—तुम क्या चाहते हो ? यदि तुम भी शहर जाना चाहते हो तो मैं जरूर पैरवी कराकर डाक्टर को शहर भेजवा दूँगा। ठीक-ठीक बताओ—तुम क्या चाहते हो ?'

रमेश बड़ा चतुर बालक है। समझ गया कि नरेन्द्र बाबू उससे खेल रहे हैं। बस, वह मुस्कुरा कर चुप हो गया।

कि डाक्टर साहब आला लिये पहुँच गए और अपनी चिरपरिचित हँसी लिये पूछ बैठे—'क्या नरेन्द्र बाबू, बहुत देर से आए हैं क्या ? माफ करेंगे, आज भी अस्पताल में ऐसा काम आ गया कि मैं बुरी तरह फँस गया।'

'नहीं-नहीं, डाक्टर का तो ऐसा पेशा ही है—कभी एक मिनट भी चैन नहीं।'

'साहब, बाबूगंज वालों ने तो चमारों को ऐसा कसकर मारा है कि कुछ न पूछिए। दिमाग काम नहीं करता। साधनहीन अस्पताल और ऐसे-ऐसे भीषण जख्मी। इधर-उधर से दवा जुटाकर काम चला रहा हूँ।'

'यह भी गुनाह बेलज्जत ही हुआ।'

'बिल्कुल, आप नोट कर लें—अगलगी और बलवा में सब चमार फँस जाएँगे और बबुआन छूटकर मूछों पर ताव देंगे। सरकारी मशीनरी ऐसी गई-बीती है कि कुछ भी न्याय नहीं हो सकता। सब जगह पैसे का खेल है। 'बाप बड़ा ना भइया, सबसे बड़ा रुपइया।'—क्या कहूँ, आँख से

लहू उतर जाता है। मगर दारोगा ने ऐसी चाल चल दी कि सभी चित।'

'हाँ, बड़ा दमघोंट वातावरण है। मगर चारा क्या ? बस, तमाशा देखना है। उफ, इस ज्यादती की भी कोई हद है ? आप उनकी बेटी की अस्मत लूटते हैं और जब वे फरियाद करने जाते हैं तो उन्हें फँसा दिया जाता है।'

'नरेन्द्र बाबू, जिसकी लाठी, उसकी भैंस। यहाँ और किसी की सुनवाई नहीं। और, ये चमार बाबूगंज वालों के सामने क्या ठटेंगे ? हजारों बीघे जमीन और यह महँगी ! आज माटी हो गई सोना। आज खेती इंडस्ट्री हो गई है—इंडस्ट्री। हर साल धान और ईख बेचकर लाखों बटोर कर रख देते हैं।'

'हाँ, बात तो ठीक कहते हैं। अच्छा, उस चमार की छोकरी का क्या हुआ ?'

'उनका लीडर भगत उसे अपने घर ले गया। वह अपने को बड़ा क्रान्तिकारी विचारों वाला कहता है। ले गया है अपने बेटे से ब्याह देने को; मगर देखिए, क्या करता है—ऐसे आदमी तो वह भला है—उसके साथ अत्याचार वह न करेगा। अच्छा ही हुआ; वह यहाँ से हटा दी गई नहीं तो बबुआन उसे जान से मरवा देते। उसी पर सारी गवाही टिकी हुई है।'

दोनों कुछ देर को चुप हो गए; फिर डाक्टर हाथ-मुँह धोने अन्दर चला गया।

नरेन्द्र अकेले कमरे में पड़ा-पड़ा अखबार उलट-पुलट रहा है। मन जाने कहाँ-कहाँ भाग रहा है कि देखा, टेनी बाबा अपनी छड़ी टेकते अन्दर चले आ रहे हैं।

'आइए बाबा, आइए—आज बहुत दिनों बाद···· ।'

'अजी साहब, बूढ़ों को कौन याद करता है ? किसी दिन मर-बिला जाऊँगा । ···जिनकी जवानी, उनका जमाना !'

'नहीं-नहीं, बाबा, ऐसी बात नहीं । काम इतना रहता है कि एक क्षण फुरसत नहीं । यह तो आज एतवार है और कहीं का टूर-प्रोग्राम नहीं है जो आपसे इस इतमीनान से भेंट हो गई—वरना रात-दिन जान आफत में रहती है । एक-न-एक झमेला । यह ब्लॉक तो महा वाहियात है !'

'अजी, कुछ न पूछिए, एक-न-एक वाकया होते ही रहते हैं । अभी चमारों और बाबूओं ने गुल खिला दिया । क्या जमाना बदल गया है ! चमारों की भला यह मजाल ! और पुलिस की भी यह धाँधली ! दोनों ओर से पैसा खा रही है और दोनों पार्टी को नचा रही है । आजाद हिन्दुस्तान का बड़ा आबदार नक्शा पेश कर रही है—उफ, क्या बताऊँ, बड़का सरकार के जमाने में पुलिस बसन्तपुर में फटकने नहीं पाती थी । गाँव के सीवान पर ही बगीचे में दारोगाजी अपना त्रिपाल गाड़ते और सरकार का जब हुक्म होता तभी गाँव में घुसते और किसी मामले की तहकीकात करते । मगर भला आज—बाप रे ! पुलिस सर पर सवार रहती है । यही बाबूगंज वाले आज पुलिस का तलवा सहला रहे हैं और एक जमाना वह था जब दलगंजन सिंह के बाप से रायसाहब ने उनकी खूब पिटाई करा दी थी ।'

नरेन्द्र चौंक कर चौकी पर से उछल कर कुर्सी पर जा बैठा और बड़ी कुतूहलभरी दृष्टि से बाबा को देखता उनकी बातें सुनने लगा ।

"अरे वाह ! आप तो चौंक पड़े ! अजी, इन्हीं आँखों ने क्या-क्या न तमाशा देखा—वह भी देखा, यह भी देख,

इन अँखियन की यही बिसेख।"

मेहर खाँ साहब के घर में आकर क्या बस गई, रावसाहब के दिल में भी घर कर गई। उसने रेयाज पर विशेष ध्यान दिया और फिर उसकी कला ऐसी निखर गई कि क्या कहने ! खुदा ने उसे गला तो दिया ही था, उस पर रेयाज की जो पॉलिश पड़ी तो खूब चमक उठी।

हमारे मल्लिकजी रात-दिन एक कर उसे नित-नई राग-रागिनियों पर रेयाज कराते रहे और रेयासत की भरी महफिल में जब वह अपनी नजर पेश करती तो सारी महफिल बाग-बाग हो जाती। छोटी मैना-बड़ी मैना के हिमायती दाँतों तले उँगली काट कर रह जाते और मल्लिकजी अपनी सफलता पर फूले नहीं समाते। रावसाहब ने मेहर में अपनी कल्पना की एक मूर्त्त झलक पाई और जब वह जियाजवन्ती या बागेश्वरी राग में एक गाना पेश करती तो रावसाहब उसके स्वर की माधुरी पर जाने कहाँ बहते चले जाते और अपनी सुध-बुध खो बैठते। गाने के उपरान्त जब वह अपना तानपूरा रखती तो उन्हें जान पड़ता कि किसी मधुवन की एक मीठी लम्बी यात्रा के बाद वे इस महफिल में अभी-अभी लौटे हैं।

एक दिन मेहर की माँ ने पाया कि उसकी बेटी के दिल को भी कोई विराट् अकेलापन घेरे जा रहा है और जिस दिन वह महफिल में नहीं

जाती, बड़ी खोई-खोई-सी रहती है और अनमनी-सी बिना खाए-पिए ही पलंग पर जाकर सो जाती है। उसका मन बहलाने की माँ लाख कोशिश करती मगर वह लाख कोशिश पर भी बहल न पाती और कोई रिक्तता उसे घेर लेती। मेहर की माँ मन-ही-मन सोचती—यह वहशीपन किसी सुखद आनेवाले कल का सूचक है और जो ज्वाला रावसाहब की छाती में फूट पड़ी है उसकी चिनगारी मेहर की छाती में भी समा गई है।

एक दिन पानी की झड़ी छूट ही नहीं रही थी। भोरे-पराते जो ठायँ-ठायँ पिटाई शुरू हुई वह रात तक लगातार चलती ही रही। उस दिन मेहर बड़ी परीशान रही। जिस शाम का इंतजार वह दिन-भर बड़ी परीशानी से करती रही—वह आई और चली गई मगर रेयासत से लैंडोगाड़ी नहीं आई—इस आफत में गाड़ी आए तो कैसे—दिल की कशिश दिल ही में रह गई। उस रात बिटिया ने नहीं खाया। माँ ने लाख मनावन किया—आज बिरियानी उसने अपने हाथ से बनाई है। हिलमाना का गोश्त। मगर एक चम्मच भी लेने से वह इनकार कर गई। अन्त में आजिज आकर उसने कहा—'दुर पगली, यह भी लगन में कोई लगन है? एक दिन यहाँ से भागने को तुम परीशान थी और आज यह हालत हो गई कि एक दिन महल की महफिल में न गई तो मन मार कर बैठ गई। यह भी कोई कशिश है? उठ, मन न मार, कुछ खा ले; गर उधर भी ऐसी कशिश होगी तो देखना—'खिंचकर आ ही जाएँगे!'—वह हँस पड़ी। मेहर मुस्कुराती रही—'अम्मी जान, ऐसी मेरी किस्मत नहीं....।'

'फिर वही बात....देखना।'

'तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर!'

रात काफी बीत चुकी है। मेहर ने तानपूरा उठाकर मालकोश का राग छेड़ दिया है। बाहर बरामदे में चिक गिराकर माँ सो रही है। बूँदों की झड़ी कम हो गई है मगर झींसी अभी भी पड़ रही है। मोती-सी छोटी-छोटी बूँदें।........

कि दरवाजे पर ठक-ठक आवाज।....ठक-ठक। माँ-बेटी चौंक पड़ती हैं।....इतनी रात गए....आखिर कौन...?....महरी...ओ महरी! महरी खर्राटे ले रही है।

दरवाजा खुलता है—सामने खड़ा है पीरबख्श....लालटेन लिये हुए। माँ काँप उठती है—'क्यों, खैरियत तो है पीरबख्श ?'

'हाँ, सब खैरियत है...मगर इत्तिला बजा रहा हूँ....सरकार बहादुर गश्ती में निकले हैं और थोड़ी ही देर में यहाँ आने ही वाले हैं—।'

'ओह, इतनी रात....!'

'हाँ, मनमौजी मालिक, जब जी करता है पेशगैबत में मुँह ढँककर लम्बी गोजी लिये निकल पड़ते हैं अपने रिआया का सुख-दुःख देखने। इस

भेस में उन्हें कोई पहिचान सकता है थोड़े। बस, हम····दो-चार····उनके अपने हाली-मुहाली उनके इर्द-गिर्द उनकी हिफाजत में घूमते रहते हैं। किसी से कहना नहीं—स्वागत की तैयारी करो।'

माँ के तन से पसीना छूट पड़ा। अब क्या करूँ ? महरी की पीठ पर एक धौल जमाकर उसे उठाया। और मेहर !—वह तो शुक्र मनाने लगी। आज चाँद उसके घर उतर आया। किधर बिठाऊँ—क्या खिलाऊँ ?

'क्यों ! आज इतनी रात गए मुझे देखकर अचंभित हो गई ? मुझे पहिचाना नहीं ? वाह, तुम्हारी आँखें इतनी मोटी हो गई हैं ?'—अपने चेहरे से नकाब उतारते हुए उस रात के मेहमान ने पूछा।

'मेरी आँखों ने ही नहीं, मेरे दिल ने भी आपको पहिचान लिया है। आज आप न आते तो जाने मेरी क्या हालत हुई रहती। सारी रात आँखों में ही कट जाती। मगर मेरे मालिक, आपने मुझ खादिम पर आज बड़ा एहसान किया।'····और वह भाव-विह्वल हो आज पहली बार उनकी छाती में समा गई—जैसे वह लाख कोशिश कर भी अपने को रोक न सकी।

मगर रावसाहब को ऐसा लगा कि अतीत के जाने कितने ऐसे मिलनों की आज परिणति हुई हो। चिराग के झिलमिलाते अँजोर में इस प्रेम-मिलन के दृश्य को शायद किसी ने नहीं देखा। पास ही बैठी एक काली बिल्ली ने उसे देखा हो तो कोई ताज्जुब नहीं, मगर माँ तो आलमारी खोल कर कुछ खटर-पटर कर रही थी—इतनी रात गए मेहमाननवाजी के इंतज़ाम में बझी हुई थी।

....

....

'मेहर, ओ मेहर !....'

वह जैसे नींद से जागी और अपने को बाहुपाश से छुड़ाकर उधर दौड़ पड़ी।

'तुम भी अजीब सिड़ी हो। इतनी रात गए वह आए और तुम कुछ खातिर-बात....।'

'हाँ-हाँ, मैं तो यह भूल ही गई थी। चूल्हा तो बुझ चुका है—अब इस वक्त....।'

'बादाम और पिस्ते की बर्फी है, नानखताई भी है—और तीतर का कबाब।'

'ओह, तब तो बहुत है।....और हाँ, गाँव से चाचा दशहरी आम भी दे गए हैं।'

'हाँ, वह तो मैं भूल ही रही थी।'

वह एक तश्त में सजा कर सब ले आती है।

रावसाहब मसनद के सहारे दीवान पर लेटे हैं—'वाह, फिर तुम तकल्लुफ करने लगी....।'

'नहीं, तकल्लुफ नहीं, आज चाँद की रोशनी गरीब की झोपड़ी पर उतर आई है—उसी खातिर कुछ....।'

'कुछ नहीं, यह तो बहुत कुछ है।'

'आप मुझे शर्मिन्दा न करें....और हाँ, इजाजत हो तो एक बात और अर्ज करूँ।'

'एक नहीं, दो....।'

'चाचा घर का चुआया हुआ अर्क दे गए हैं। तीतर, बटेर, बगेरी और सब मेवों के साथ तैयार किया गया....।'

'वाह, खूब ! नेकी भी पूछ-पूछ कर ?—लाओ-लाओ....।'

रावसाहब चुस्की ले रहे हैं। मेहर राग मालकोश पर एक धुन छेड़े हुई है। बाहर फुहारों की फिर झड़ी-सी लग गई है। रात भींग रही है। सारा माहौल स्वप्निल-सा लग रहा है।

रावसाहब अक्सर रात में वेष बदल कर मेहर के यहाँ चले आते। यह किसी को पता न चलता। सिर्फ उनका निजी चपरासी पीरबख्श उनकी हिफाजत के लिए साथ-साथ जाता। अजीब जमाना था वह। लोग जिन्दगी को तफरीह समझते। जीवन में आज का जैसा संघर्ष न था। तवायफों को लोग इज्जत की निगाह से देखते थे और तहजीब सीखने को अपने बच्चों को उनके कोठे पर भेजते थे। क्या अमीर और क्या गरीब—हर कोई किसी-न-किसी तवायफ से अपना संग जोड़ लेता था। और, अमीर की रियासत में कमी समझी जाती थी यदि वह किसी तवायफ को अपने घर में बाइज्जत नहीं रखता था। यह तो उस युग का एक फैशन था जैसे। बीवियाँ घर की शोभा ही भर रहती थीं—एक रस्म की तामीली। पर्दे की दुनिया की रानी ! लाज-लिहाज, दकियानूसी रस्म-रिवाज में सनी-लिपटी। पुरुष के जीवन की खुराक वे नहीं जुटा पातीं और इसीलिए पुरुष कहीं और अपनी भावनाओं का मधुवन बना लेता था।

रावसाहब ने भी मेहर में अपनी रूमानी भावनाओं का प्रतिबिम्ब

देखा। प्रतिबिम्ब क्या देखा—उसे साकार बनाने को ललक पड़े। हुक्म दिया—लालबाग वाली कोठी को मरम्मत करके एकदम नया बना दिया जाय। सरकारी हुक्म की देर थी। रात-दिन एक करके राज-मजदूरों ने उस पुरानी कोठी को एकदम नये साँचे में ढाल दिया। ऐसा कि अब कोई उसे पहिचानने से रहा। जनानखाना अलग तो दीवाने-आम और दीवाने-खास अलग। झाड़-फानूस से सजी लम्बी बारहदरी भी अपनी आन-बान के लिए मशहूर हो गई।

एक दिन सायत देखी गई। उसी शुभ मुहूर्त्त में रावसाहब मेहर को लेकर 'मेहर मंजिल' में पधारे। बाहर तमाशबीनों की भीड़ थी। अन्दर राजमणि देवी महरियों का हुजूम लिये मेहर की अगवानी में खड़ी थीं। मेहर ने सिन्दूर लगा रखा था। उधर भोर-पराते ही उसकी माँ अपने गाँव को चल पड़ी थी। उनके आते ही सदर दरवाजे पर शहनाई फूट पड़ी और रात में गुब्बारे उड़ाए गए। मेहरमंजिल हजारों-हजार दीप-मालिकाओं से जगमगा उठा।

उधर महल में रावसाहब की पत्नी राजरानी ने अपनी महरी फूलमती को पास बुलाकर पूछा—'तो राजमणि देवी ने अपनी ईर्ष्या और द्वेष का साकार रूप खड़ा कर दिया? सुना, मेहर नई कोठी में बाजाब्ता लाकर रख ली गई—बाइज्जत। भगवान मालिक........। खैर, राजमणि देवी ने अच्छा न किया। मेरा ही नहीं, अपना भी भविष्य बिगाड़ा। वह समझती है कि वह बड़ी दूर की गोटी खेल रही है। मगर हाय, वह अपने ही घर में मारी गई। देखना, अब क्या गुल खिलते हैं! रंडी-पतुरिया क्या उसकी जूतियाँ ढोएगी? हरगिज नहीं। जमीन पकड़ते ही वह सर पर जाकर

बैठ जाएगी और दूध की मक्खी की तरह उसे निकाल कर बाहर फेंक देगी।'

गुस्से से उसका चेहरा लाल हो उठा।

जबसे मेहर लालबाग में रहने लगी, महफिलों में उसका गाना बन्द कर दिया गया। हाँ, अन्दर बारहदरी में रात में उसका गाना रावसाहब खूब सुनते और उस मजलिस में मल्लिकजी के अलावा कभी-कभी राजमणि देवी भी पधारतीं।

एक रात ऐसी ही जनानखाने में महफिल जमी थी कि पीरबख्श ने इत्तिला भेजी कि दारोगाजी आए हैं। एक-दो बार सुनकर रावसाहब ने अनसुनी कर दी। मगर जब पीरबख्श ने बार-बार खबर भेजवाई तो वह भड़क उठे—'कौन बदतमीज दारोगा इतनी रात गए मुझे परेशान कर रहा है? साला! धत्........' और दलगंजन सिंह के बाप रामजनम सिंह को झट बुलाकर ऑर्डर दिया कि हाल कमरा में जहाँ वह बैठा है उसे बन्द करके उसकी खूब खबर लो ताकि उसका होश-हवास दुरुस्त हो जाय। बस, आर्डर की देर थी। दारोगाजी की खूब पिटाई हुई और उसके बाद जो वे गाँव से भागे तो फिर रावसाहब की जिन्दगी में कोई भी पुलिस-दारोगा इस गाँव में डर से न आया। ऐसा रोब रहा उनका। उनके नाम से सारा इलाका थर्र मारता रहा। किसी की मजाल नहीं कि जिधर से वे निकल जाते उधर सर पर बिना कोई टोपी या पगड़ी रखे बैठा रह जाय। तुरत उसकी मरम्मत हो जाती। बड़े जोशीले जवान। लम्बी गोजी की तरह खड़े। उफ, क्या चेहरा-मोहरा था! देखिए तो देखते ही रह जाइए। खूब खूबसूरत जवान।

तो डाक्टर साहब ने कहा—'यह भी समय का फेर है कि आज उसी रामजनम सिंह के उत्तराधिकारियों को दारोगा परीशान कर रहा है—रोज थाना और कोर्ट में दौड़ा रहा है और पैसे भी वसूल रहा है। लीजिए—पुरुष बली नहिं होत है, समय होत बलवान।'

.....'उठिए-उठिए, खाना ठंढा हो रहा है।' डाक्टर ने उसे जगाया। नरेन्द्र चौंक उठा—जैसे कच्ची नींद बदन झकझोर कर किसी ने जगा दिया हो।

'सरकार, यह रख लें एक हजार—सौ-सौ के दस नोट। यह हमारा नजराना। यदि परानपुर के राजाराम साह ने पाँच सौ दिए तो हमारा एक हज़ार लीजिए—दुगुना। मगर अमौना ताल के किसानों के लिए जो राशन की दूकान खुल रही है, उसका लाइसेंस हमें मिलना चाहिए।'—सोहन साह ने बड़े आत्मविश्वास से कहा। वह जानता है कि चाँदी के जूते की मार से ही लाला रामजतन लाल, बी० डी० ओ० ऑफिस के बड़े किरानीबाबू, जेर किए जाते हैं। यही इनकी सबसे बड़ी कमजोरी है और यही सोहन साह की सबसे बड़ी मजबूती।

रामजतन लाल नाक की नोक पर टँगे हुए चश्मे के लेंस से रुपये की गड्डी को निहार रहे हैं—या यों कहिए—देख-देखकर मोहा रहे हैं।

'क्या सोच में पड़ गए सरकार? रखा जाए टेंट में। जरूरत पड़ने पर और दूँगा—मगर इस समय तो सगुन बने!'

'हाँ सोहन साहजी, रख तो रहा ही हूँ। भोरे-भोरे सगुन तो बन ही गया, मगर यही सोच रहा हूँ कि मेरी कमाई की सोहरत इस इलाके में

इतनी फैल गई है कि बिटिया की शादी में सभी कसकर तिलक माँग रहे हैं। साले बिरादरीवाले कान खड़े किए हुए हैं कि एक सौ रुपये पानेवाला किरानी मुंशी रामजतन लाल इतने पैसेवाला कैसे हो गया—रुपया कहीं बरस रहा है क्या ?'

'सरकार, इसी को न रुपया बरसना कहते हैं—इकबाल बुलन्दी पर है सरकार का। अगले साल भी सुखार रह गया तो, भगवान मालिक, रुपये पटरा कर देंगे आप। यह तो एक दूकान की बात रही—जाने कितनी दूकानें इस तरह खुलेंगी और खुलती रहेंगी।'

रामजतन लाल का मुँह चपचपा गया। अगले साल भी सुखार··· जाने कितनी दूकानें खुलेंगी···कितनी नोट की गड्डियाँ बरसती रहेंगी। धन्य मेरे मालिक, धन्य मेरे मौला !

'तो सरकार ने कोई हुक्म नहीं दिया। चुप ही रह गए मालिक !'

'तुम भी मजाक कर रहे हो सोहन साह जी ? मेरा इशारा ही काफी है। काम तो तुम्हारा बनकर रहेगा।'

'मगर सरकार, बड़ा कम्पटीशन बढ़ गया है। सभी दोस्त दुश्मन हो रहे हैं। रामचन्द्र साह, रामप्रसाद, गोधन, राधा साह—सभी कोशिश कर रहे हैं। सभी गोटी बिछा रहे हैं।'

'बिछाने दो गोटी। मैं जो गोटी खेलूँगा वह कोई माई का लाल क्या खेलेगा ! तुम चुपचाप बैठो। हाँ, जब कुछ पैसे का काम होगा तो तुम्हें खबर करूँगा।'

'ताबेदार तन-मन-धन से तैयार रहेगा सरकार !'

सोहन साह बड़ा झुककर सलाम बजाता चलता हुआ। रामजतन लाल

डूब गए—'इतने से क्या होगा ? बिटिया की शादी इंजीनियर से करनी है। भारी-भरकम रकम चाहिए। अमौना ताल के गरीब किसान भला कोटा का माल क्या उठा सकेंगे ! साले मुफ्तखोर क्या गेहूँ खरीद सकेंगे ! बस, अमरीकी गेहूँ जो मुफ्त में बँटेगा उसी से उनका काम चल जाएगा। बाकी सब माल तो सोहना ब्लैक ही करेगा। इसलिए बोरा पीछे हिस्सा रखा लेना जरूरी है वरना बेटी की शादी इस लगन में भी न हो सकेगी।...हाँ, तो यह बात कुछ जमी—ठीक है—जय काली भवानी !'—बड़े इतमीनान की साँस लेकर बीड़ी सुलगाते हैं।

'क्यों जी रामचन्द्र ! कुछ सुना है तुमने ?'—रामप्रसाद साह ने कान में फुसफुसाते हुए कहा।

'क्या, क्या बात है ?'—रामचन्द्र साह चौंक पड़ा।

'सुना है, सोहन रामजतन लाल को चटा आया। अब क्या होगा ?'

'तुम हो बड़े बेवकूफ ! अरे, वह तो सबसे खाएगा। हम भी उसे कुछ चटा दें। मगर इतने से काम न चलेगा। चलो, पण्डितजी को पकड़ लें। सरकार उनकी, बी० डी० ओ० उनका।'

पण्डित वीरमणि पाठक का दरबार जमा है। राजनेता का दरबार—राजनीति पर बहस छिड़ी है। ग्रामपंचायत के चुनाव की तैयारी शुरू हो रही है। फेंकू, डोमन, घुरफेंकन—सभी मजलिस में जमे बैठे हैं। ठाकुर और चमारों में जो जंग छिड़ गई है वह पाठकजी के लिए बिनमाँगे मुराद बनकर आ गई है। दलगंजन सिंह के पास पैसा है तो चमारों के पास छटभैयों का वोट है। आज के जमाने का सबसे बड़ा धन। एक वोट पर राज पलट जाए ! पाठकजी भी मुखिया के उम्मीदवार हैं। चमारों को मिलाकर मतलब

साधने का सही मौका आ गया है। यह मौका यदि हाथ से निकल गया तो बाजी जिच्च हो जाएगी !

"तुम फिकर न करो घुरफेंकन। जाकर हरिजन टोली में डुग्गी पिटवा दो कि जब तक पं० वीरमणि पाठक जिन्दा हैं, उनका कोई बाल भी बाँका न कर सकेगा। दारोगा ने यदि घूस खाकर केस बिगाड़ दिया है तो कोई परवा नहीं। यदि मैं असल बाप का बेटा हूँ तो उसे यहाँ से बदलवा कर छोड़ूँगा ! राजधानी और बसन्तपुर एक कर दूँगा। मैं भी अपनी झोली में मनिस्टर पालता हूँ। समझे फेंकू, मैं कच्ची गोली खेलनेवाला नहीं। और तुम तो मेरी ताकत आजमा चुके हो। सैकड़ों अर्जियों के बीच तुम्हें शराब की दूकान मिलकर रही।'—पाठकजी ने बड़े उतावले हो उस मंडली को अपनी स्पीच की एक खुराक पिला दी। सामने बैठी हरिजनों की टोली उन्हें बड़ी आशा-आत्मविश्वास से, अपनी ललचाई आँखों से देखती रही—जैसे आज उसके एकमात्र रक्षक वे ही हों।

'भाइयो, बाबा का चमत्कार तो हम देख चुके हैं। यदि बाबा का पल्ला हम नहीं पकड़ते तो हमारा बेड़ा पार नहीं होता। हमें आज दो-चार पैसे जो मिल रहे हैं—वह सभी बाबा के परताप से ही मिल रहे हैं।'—फेंकू ने पंचों को समझाते हुए कहा।

सभी एक सुर से बोल उठे—'धन्य हो बाबा का—धन्य हो।'

बाबा के चरण छूकर रामप्रसाद साह और रामचन्द्र साह उनकी चौड़ी चौकी पर जमे आसन के नीचे बैठ गए। बाबा ने मसनद को सहलाते हुए पूछा—'कहो साहजी-द्वय, सब खैरियत तो है ?'

'बस, बाबा का आशीर्वाद चाहिए।'

'बड़ा हल्ला है, राशन की दूकान फिर बँटने जा रही है।'—बाबा ने मटकी मारी।

'ऐ लो! बाबा तो अन्तर्यामी भी हैं। इन्हें सब खबर है।'—दोनों ने एक स्वर में कहा।

'एक कहावत है—'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि।' अब वह कहावत पुरानी पड़ गई। अब तो यह कहो कि 'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जायँ पाठकजी।'

'तो मैं सबकी खबर रखता हूँ?'

'जी, जी।'

'अच्छा, तुम दोनों से बाद में बातें करूँगा। बैठो अभी।'—पाठकजी ने बड़े इतमीनान से कहा।

'देखो फेंकू, मैं कल शहर जा रहा हूँ। कचहरी में कुछ काम है। तुम और घुरफेंकन मेरे साथ चलो। डोमन बहुत बूढ़ा हुआ। और, उसे कोर्ट-कचहरी का काम क्या समझ में आए! उसे छोड़ो। हमलोग चलकर सब कागज-पत्तर आँख से देख लें और एक अच्छे वकील से राय ले लें, तब तय किया जाय—आगे कैसे बढ़ना है। जमाना है बड़ा खराब। अब तो खून करके आओ और पास में पैसा हो और तिकड़म हो तो साफ बच कर निकल जाओ। तुम्हें सच कहता हूँ, हिरामन के बाप का चेहरा मुझसे देखा नहीं जाता। उसकी माँ तो पागल हो गई है—और उसकी जवान बहू, उफ, कुछ न पूछो।........अरे, ओ घुरफेंकन! तुम ऊपर-नीचे क्या देख रहे हो? मैंने फेंकू से कह दिया है कि यही मौका है किसी की सेवा करने

का—पुण्य कमाने का। तुम्हारा शहर जाने का खर्चा फेंकू दे देगा। घबड़ाओ नहीं। ....'

थोड़ी और गुफ्तगू के बाद बाबा ने मंडली बरखास्त कर दी और बगल दालान में चले गए। पीछे-पीछे दोनों साहजी भी लग गए।

'अब बताओ, बात क्या है ?'

'बाबा, बात यह है कि सोहन साह आफिस को पैसा चटा चुका है, वहाँ से हमारा पत्ता कट गया। अब आपको ही हमें किसी तरह राशन की दूकान दिलानी है। रामजतन का पेट है बड़ा भारी—उसे खुश करना आसान नहीं। हमलोग छोटे असामी।' —इतना कहकर रामचन्द्र और रामप्रसाद पाठकजी के पैरों पर गिर गए।

पाठकजी कुछ देर को चुप हो गए फिर बोले—'रामजतन मेरे सामने क्या टिकेगा ! मैं उसे मीटिंग में दुरुस्त कर दूँगा। मगर एक बात याद रखो—ग्रामपंचायत का चुनाव सर पर है। मुझे भी........'

'आप इसके लिए इतमीनान रखें। हम जी-जान लड़ा देंगे।'

'आजकल सिर्फ जान देने से कोई चुनाव नहीं जीतता है। पैसे चाहिए—पैसे। समझे ?........'

दोनों एक दूसरे को देखते हैं फिर झट बोल उठते हैं—'बाबा, इसके लिए फिक्र न करें। उसका भी इन्तजाम होगा न, हमारी औकात ही कितनी....फिर भी—।'

'हाँ, वही मैं कह रहा था—यथाशक्ति द्रव्य से भी मदद देनी होगी—बेटी का ब्याह ही समझो........।'

पाठकजी निछक्का राजनीति के अखाड़े के दंगलबाज हैं। उन्होंने अपनी बात साफ-साफ रख दी।

पाठकजी से विदा ले जब दोनों गली के रास्ते अपने घर की ओर चले तो रामप्रसाद ने कहा—'रामचन्द्र ! कोउ न रहा बिन दाँत निपोरे—धत्…… ।'

'बेनीमाधवजी ! कोई रामजतन बाबू का पल्ला पकड़ रहा है, कोई पाठक बाबा का पल्ला पकड़ रहा है—बस, अकेला मैं मारा जा रहा हूँ। बड़ी धाँधली होने जा रही है—पैसा खा-खाकर राशन की दूकान बँटने जा रही है। हमारा केस आपको—बिहारी बाबू और सूरज सिंह को लेना पड़ेगा—समझे ?'—गोधन साह ने जरा कड़क कर कहा।

'क्यों बिहारी भाई, कुछ सुन रहे हो ?'

'सब सुन रहा हूँ। सब देख रहा हूँ।' हमें भी कुछ-न-कुछ करना है। वरना पाठक हाथ मार ले जाएगा। वह अपने को छोटा-मोटा नेता नहीं मानता। बड़ा नेता मानता है—बड़ा।'—बिहारी ने जरा गम्भीर होकर कहा।

'देखो गोधन, मैं बात साफ जानता हूँ। बिना दौड़-धूप किये कुछ होगा नहीं। तुमको बड़ा सतर्क रहना होगा। सारी खबर हमारे पास पहुँचाते जाओ—फिर हमलोग टिप्पस भिड़ा देंगे। मगर भाई, कुछ खर्च करना होगा। यानी—पान-पत्ती, चाय, रसगुल्ला पर। शहर जाने का किराया भी देना होगा। ए० डी० एम० के ऑफिस से भी बी० डी० ओ० पर जोर

ढलवाना पड़ेगा। समझे ? हमलोग तुम्हारा ज्यादा खर्च नहीं कराएँगे।'
—सूरज सिंह ने कुछ सोचते हुए कहा।

'देखिए, आपलोग भी गाँव के नेता ही हैं। हमलोग आपलोगों को ही अपना नेता मानते हैं। गाँव के सुख-दुःख में आपलोग भी खड़े हो जाते हैं। फिर इस समय जब इतना बड़ा अन्याय होने जा रहा है तो क्या आप आवाज नहीं उठाएँगे ? मैं खर्च करने को तैयार हूँ।' —गोधन ने गरज कर कहा।

'घबड़ाओ नहीं गोधन, सौ सुनार की न एक लुहार की! रामजतन लाल और बाबा को करने दो पैरवी। हम भी कच्ची गोली नहीं खेलते। मजा चखा देंगे सबको। बाबा की लीडरी धरी रह जाएगी। तुम फिक्र न करो—खर्च करने को तैयार रहो। और हम हिम्मत से काम लेंगे। समझे ?'—सूरज सिंह ने बिहारी और बेनीमाधव की ओर देखते हुए कहा।

'अरे, ओ सुगना, लाओ सोहनपपड़ी, सिंघाड़ा और चाय। तीन-तीन।'

'और तुम ?.....'—बेनीमाधव ने झट कहा।

'हम बाद में नाश्ता करेंगे।'—गोधन ने कहा।

'नहीं, यह गलत बात है। हमलोग पाठकजी ऐसे लीडर नहीं हैं जो अपने को सबसे बड़ा मानें और सबसे पैर धुलवाते चलें। हमलोग सबको बराबरी का पद देते हैं और सबकी एक-सी इज्जत करते हैं। ओ सुगना ! लाओ, गोधन के लिए भी नाश्ता लाओ। जाओ मालकिन से झट बोलो।' सूरज सिंह ने हँसते हुए कहा।

गोधन साह के दालान में गाँव के छोटे-छोटे नेताओं की मजलिस जमी है और टिप्पस बिठाया जा रहा है।

आज बसन्तपुर ब्लॉक में ए० डी० एम० साहब पधारे हैं। रात ही से वह सपत्नीक नहर के डाकबँगले में ठहरे हैं। उनके खाने-पीने का सारा इंतजाम मुंशी रामजतन लाल के इशारे पर सोहन साह तथा ओवरसियर बिन्दा प्रसाद कर रहे हैं। मांटू सरकार ए० डी० एम० की पत्नी सविता एक क्रिश्चियन महिला हैं। दौरे पर यदि उनकी पूरी खातिरदारी न हुई तो क्या अफसर और क्या मुलाजिम—सबकी वह खूब खोज-खबर लेती हैं। डाकबँगले के इर्द-गिर्द सोहन साह तथा बिन्दा प्रसाद को देखकर नरेन्द्र कुढ़ जाता है, मगर कुछ बोलता नहीं। उसकी ऐसी धारणा है कि ए० डी० एम० साहब खुद ऐसे लोगों को प्रोत्साहन देते हैं।

ठीक साढ़े दस बजे सरकार साहब ब्लॉक ऑफिस पहुँचते हैं। आज ऑफिस में विशेष चहल-पहल है। सभी अपनी-अपनी ड्यूटी पर समय से पहले आकर जम गए। मंगर पाँड़े चपरासी ने अपने कपड़ों को धुलवा कर बड़े करीने से पहन लिया है। पगड़ी पर ब्लॉक का पीतल का निशान लगा है। साहब बहादुर के पहुँचने के कुछ देर पहले ही से ब्लॉक ऑफिस के

फाटक को घेरे प्रदर्शनकारियों की एक खासी अच्छी भीड़ इकट्ठी हो गई है। जुलूस में मुख्यतः अमौना ताल के किसान ही हैं। फाटक के एक खंभे पर खड़ा होकर सूरज सिंह स्पीच झाड़े जा रहा है।—'किसान भाइयो! ठीकेदार और ओवरसियर, अफसर और मुलाजिम—सबों ने पैसा लूटकर कच्चा बाँध खड़ा कर दिया जो मध्य बरसात में ही धराशायी हो गया। अब तुम सब लोग पानी बिना छटपटा रहे हो। पटवन का कोई इन्तजाम अब सरकार नहीं कर पाती है। सारा इलाका सूखे का शिकार हो गया है। न्याय हो....न्याय हो....।'

फिर नबी मियाँ खड़ा होता है—'किसान भाइयो! बाँध तो बह ही गया, मगर उससे भी बड़ा अंधेर तो यह हुआ कि तुम्हें पीने का पानी तक नहीं मिलता। सभी पम्प ठप्प पड़े हैं। ठीकदार पैसा हजम कर गतलखाने से लाकर टूटा-फूटा पम्प गाड़-गूड़ कर, बिल का पैसा ले चम्पत हुआ और अब पानी के लिए तरस रहे हो तुम! इसका जिम्मेवार कौन है? यह सरकार! यह ब्लॉक! हमें सरकार बदलनी होगी....क्रान्ति लानी होगी—क्रान्ति। ....जनक्रान्ति! लोग जम्हूरियत में विश्वास खो रहे हैं।'—नबी मियाँ कम्युनिस्ट पार्टी का अपना लाल झंडा नचाते हुए नीचे आकर नारा लगाने लगा—'रोटी दो, पानी दो, नहीं तो गद्दी छोड़ दो।'

अब उस मंच पर सुग्गी आता है। पुराना देशभक्त—गाँधी की आँधी में जाने कितनी बार जेल गया। सन् बीस से ही जेल जाता रहा और जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ, तब भी वह जेल में ही था। सन् बयालीस के किसी इल्जाम में किसी दफा की मीयाद पूरी कर रहा था। मगर था वह मौन

कार्यकर्त्ता, इसलिए इस टीमटाम के युग में वह खप न सका और पटरी से फेंका कर सिर्फ गाँव का गाँधी कहा जाता रहा।

अच्छा, तो गाँधीजी खड़े हो रहे हैं—हाँ, आप भी कुछ कहिए।

'भाइयो ! मैं तो आजीवन अन्याय से लड़ता रहा और आगे भी लड़ता रहूँगा। चाहे कोई जमाना आए—कोई भी सरकार आए। अमौना ताल की धाँधली तो बरदाश्त से बाहर है। मैं भी तुम्हारे साथ हूँ। मेरा शरीर तुम्हारे साथ है। मेरी आत्मा तुम्हारे साथ है। और मेरे पास है ही क्या !'

तालियों की गड़गड़ाहट।

मंच पर सूरज सिंह आते हैं—'दोस्तो ! धाँधली अभी खत्म नहीं हुई। बढ़ती ही जा रही है। राशन की दूकान जो उस इलाके में खुलने जा रही है उसमें भी धाँधली ही की जा रही है। गेहूँ बँटेगा या ब्लैक मार्केट में बेचा जाएगा—इसका कोई भी आश्वासन हमें नहीं मिल रहा है। यदि मुकम्मल इंतजाम न हुआ तो समझो—क्रान्ति हो जाएगी—क्रान्ति। इनकलाब जिन्दाबाद !'

तालियों की चौतरफी गड़गड़ाहट। नारों का जोर। बिहारी और बेनीमाधव नारों को दुहरवाते हैं कि ए० डी० एम० साहब की गाड़ी पहुँच जाती है। साथ में बी० डी० ओ० साहब भी हैं। गाड़ी रोक ली जाती है। सूरज सिंह अपनी माँगों का चार्टर उन्हें पेश करते हैं। नारे खूब जोर से लगते हैं। भीड़ उन्हें घेर लेती है। पुलिस सतर्क हो जाती है। सरकार साहब बोलते हैं—'मैं आपकी अर्जी रख लेता हूँ और इस पर विचार होगा।'

'नहीं, हम आपको जाने नहीं देंगे। हमारी सुनवाई कहीं भी नहीं

हो रही है। हमें पूरा आश्वासन दें कि हमारी माँगें पूरी होंगी। तभी हम आपको अन्दर जाने देंगे। नहीं तो सड़क पर लेट रहेंगे।'

'भाइयो! सरकार आज जनता की है। मैं आश्वासन देता हूँ कि सारी गड़बड़ी ठीक हो जाएगी। आपके यहाँ जवान एनरजेटिक बी० डी० ओ० आया है। वह सारी माँगों पर अमल करेगा और आपकी भलाई के लिए सब काम करेगा।'

कुछ देर की रक-झक के बाद भीड़ छँट जाती है। सरकार साहब माथे का पसीना पोंछते हुए ब्लॉक ऑफिस में घुसते हैं। सदर फाटक बन्द कर दिया जाता है।

'उफ, ऐडमिनिस्ट्रेशन एकदम फार्स हो गया है। इस परिस्थिति में कोई कैसे कोई काम करे! क्यों नरेन्द्र?'—ए० डी० एम० ने कहा।

'फार्स तो हो ही गया है, मगर इसके लिए हम भी तो कम मुजरिम नहीं।'—नरेन्द्र ने कहा।

'सो कैसे?'

'उनमें जो असंतोष फैला उसका कोई-न-कोई कारण तो जरूर है और यहाँ तो कारण साफ-साफ झलक रहा है। ऐसा न हो कि ऐडमिनिस्ट्रेशन में लोग विश्वास ही खो बैठें।'—नरेन्द्र ने उतावला होकर कहा।

'उतावले न हो नरेन्द्र!—उतावले न हो। तुम भी तो अभी जवान हो। गर्म खून।—चलो, अपना काम करें। बेकार की बहस में पड़ने से कोई फायदा नहीं। तीन बजे तक हमें शहर पहुँच जाना है। आज मेरा लड़का कलकत्ता जा रहा है। रात की गाड़ी से····'

लंच आवर में जब सरकार साहब जाने को हुए तो सबको ऑफिस से

हटाकर नरेन्द्र ने पूछा—'तो बिन्दा प्रसाद ओवरसियर तथा शामलाल ठीकेदार के बारे में कुछ आपने ऑर्डर न किया ?'

'ए लो ! तुम भी पागल हो गए हो ? तुम्हें पता नहीं कि वे दोनों किसी 'हाई अप्स' से 'कनेक्टेड' हैं। वे उन्हीं के बूते पर कूद रहे हैं। हम कोई 'ऐक्शन' भी लेंगे तो हमारी कहीं सुनवाई होगी ? खुद हम ही बेवकूफ बन जाएंगे।'

'तो फिर ?.....'

'फिर चुपचाप रहो। कोई 'क्राइसिस' कराने से क्या फायदा ? मुझे ऐसे केसों का बहुत तजरबा है। सभी 'इन्क्वायरी' अन्त में जाकर टाँय-टाँय फिस हो जाती है।

'तब ?—यह इलाका बड़ा जागरूक है। जरा में 'एजिटेशन' हो जाता है। आज का तमाशा आपने देखा नहीं। सभी पार्टियाँ यहाँ दफ्तर खोले बैठी हैं।'

'तो मध्यम मार्ग अपनाओ। ठीकेदार को अभी कुछ दिन टहलाते रहो और बिन्दा प्रसाद को कहला दो कि वह कुछ दिनों के लिए छुट्टी में चला जाए। पब्लिक मेमोरी इज टू शॉर्ट।'

'तो ऐसा ही कोई ऑर्डर.....'

'ओह ! लड़का न बनो। तुम कुछ आर्डर-वॉर्डर दे देना। और हाँ, राशन की दूकान ठीक से खुलवाना, नहीं तो फिर एजिटेशन हो जाएगा।'

ए० डी० एम० कतरा कर चलता बना। सविता सरकार भी सब्जी, घी, आँवला, अमरूद और एक झाँपा मुर्गी गाड़ी में लदवा कर चलती बनी।

उधर गोधन साहू के दालान में सूरज सिंह अपनी मण्डली लिये चाय-नाश्ता का दौर चलवा रहे हैं। आज प्रदर्शन का सारा खर्च गोधन के मत्थे रहा। झंडा-बैनर एकरंगा का बनवाना, नोटिस छपवाना, सारे कार्यकर्त्ताओं को अपने दालान में चाय-मिठाई खिलवाना, फिर पान-पत्ती—कुछ उधार-गाईंच भी।

शाम को चाय-पान देते-देते सुगना थक कर चूर हो गया तो बोला—'मालिक, आप कवना फेर में पड़ गए। यह सब आपको निकिया लेंगे।'

'फिकर न करो सुगना, सब जुआ है—जुआ।'

सूरज सिंह बोल रहे थे—'देखो साहू, आज पहले ही दिन ब्लॉक में थर्र बोला दिया! अब देखना, मेरी बात की कौन अवहेलना करता है! तुम्हारा काम होकर रहेगा।'

गाँव की संध्या। एकबारगी सन्नाटा छा गया। ब्लॉक ऑफिस बन्द होते ही वहाँ भूत रोने लगता है। जहाँ दिन भर इतनी भीड़-भाड़, वहाँ संध्या होते-होते सिर्फ चिनियाबादाम के छिलके, पत्तल-दोने, चाय पीकर फेंके गए टूटे कुल्हड़ों का ढेर-ही-ढेर दिखाई पड़ने लगता है।

नरेन्द्र गढ़ की छत पर बैठा चाय पीकर दिन-भर की थकान मिटा रहा है कि देखा, पाठकजी पग्गड़ बाँधे उधर से लपके चले आ रहे हैं। वह सहम गया—यह आफत का पुतला कहाँ से चला आ रहा है! एक घड़ी भी चैन[२] नहीं।

........फिर क्या, धड़धड़ाते वह कोठे पर चढ़ आए।

'प्रणाम!'

'जय, जय!'

'आपने तकलीफ क्यों की....मैं खुद घर पर....।'

'वाह, जजमान के घर पुरोहित ही आता है। मैं खुद शर्मिन्दा हूँ कि

आपसे बार-बार मिल नहीं पाता। कुछ जिन्दगी ऐसी बहकी-बहकी हो गई है कि फुर्सत ही नहीं मिलती।'

'हाँ, आप तो राजनेता हैं—आपको फुर्सत कहाँ !....'

'बस, यही तो मैं भी कहने जा रहा था। एक पैर यहाँ और एक पैर राजधानी में। मिनिस्टर लोगों को मेरे बिना चैन ही नहीं। जब मामला झंझट का पेश हुआ तो मेरी खोज-खबर शुरू हो गई। कभी-कभी तो यार लोग घर पर भी मोटर लिये पहुँच जाते हैं और मुझे बन्दी बनाकर लिवा ले जाते हैं। एक पल भी चैन नहीं। उफ, क्या जिन्दगी हो गई है ! आपके बाप-दादों के जमाने में हमारे पिताजी ने आपकी रियासत से क्या-क्या न सुख भोगा, मगर अब तो हालत परीशान है। वे भी क्या आराम के दिन थे ! कभी उनकी मजलिस नहर किनारे जमी रहती तो कभी आम के बागीचे में। खुशगप्पियाँ, हँसी-ठहाके। दिन-भर खाने का ही प्रोग्राम बनता रहता। एक-से-एक नफीस खाना। अब तो सब कहानी भर रह गई है। कलकत्ता गए तो बरसों वहीं रह गए—वहीं की दुनिया में रम गए। मगर आज ? उफ, कुछ न पूछिए।'

तब तक बिलटू पाठकजी के लिए चाय और नाश्ता ले आया।

'बस, पुराने संगियों में अब यही बच रहा। सिर्फ कहानी कहने को।—कहो बिलटू, अच्छे हो न ?'

'पाठकजी की कृपा है।'

'देखो, अपने पुराने मालिक की खूब सेवा करो—समझे ? बड़े भाग से यह अवसर मिलता है।'

'ना, तो इसमें बिलट्टू की कोई शिकायत नहीं कर सकता। एक पैर पर इस उम्र में भी खड़ा रहता है।'—नरेन्द्र ने कहा।

थोड़ी देर को सब चुप रहते हैं। सिर्फ पाठकजी चाय पीते-पीते कुछ नमकीन भी चख लेते हैं।

'नरेन्द्रजी, अमौना ताल इलाके में तो इस साल अकाल का विकराल रूप खड़ा हो गया है। मैं कल कई-एक गाँवों में उधर घूमा हूँ। कुछ न पूछिए, कहीं कोई हरियरी नहीं—सूना-सूना—बियाबान इलाका—सूखी-भूखी धरती—चारों ओर खुरदुरी मिट्टी-ही-मिट्टी—घरों में कोई अनाज नहीं—लोग पेड़ों की पत्तियाँ तथा जमीन खोद-खोदकर जड़ें निकाल कर खा रहे हैं। पानी की वही तबाही। सभी पम्प टूट-टाट कर फेंका गए हैं। अभी तो दूर-दराज इनारों से कुछ पानी मिल भी जाता है—पीछे तो वह भी नसीब न होगा।'—पाठकजी ने बड़े गम्भीर होकर कहा।

'भगवान भला करे आर राजनेताओं का—हमलोग क्या करें ? मैं तो सारी फाइल देख गया। शामलाल ठीकेदार की अर्जी में आप जैसों की दर्जनों सिफारिशी चिट्ठियाँ रखी हैं—।'

'यह भी आपने खूब कहा ! मैं कहता हूँ कि क्या हमलोग अन्तर्यामी हैं कि सबके पेट में जाकर पता लगा लें ?'

'आप क्या हैं—यह तो आप जानें, मगर जनता बेचारी तो बुरी तरह मारी गई !'

पाठकजी ने देखा कि गलत रंग पकड़ गई है। झट बात को सँभाल लिया—'आप मालिक हैं—उसको सजा देना आपका काम है।'

'सजा देना ! हुँह ! वहाँ भी बेड़ी लगी हुई है। और अब सजा क्या देना—सजा तो जनता भुगत रही है।'

'ठीक है, एक बार गलती हुई तो हुई, मगर आइन्दा कोई गलती न हो। वहाँ जो राशन की दूकान खुल रही है, उसकी पूरी जिम्मेवारी सोहन साह को दीजिए। आपके बाप-दादा के जमाने से आपका ताबेदार है और उससे ज्यादा कोटा का माल कौन उठा सकेगा ? उसके पास पूँजी है, ईमानदारी है—उसे ही यह काम मिलना चाहिए।'—पाठकजी ने पूरा जोर देकर कहा।

'देखिए....।'—नरेन्द्र चुप हो सोचने लगा—पाठकजी उसी की पैरवी कर रहे हैं, मुंशी रामजतन लाल उसी पर अपना नोट दे रहे हैं। आखिर—या इलाही, य' माजरा क्या है !'

नरेन्द्र ने पाठकजी को ज्यादा 'लिफ्ट' नहीं दिया इसलिए थोड़ी देर और बातचीत कर पाठकजी चलते बने। नरेन्द्र हाथ-मुँह धोकर तैयार होने के लिए अन्दर चला गया।

संध्या की कालिमा कुछ और घनी हो चली है। छत से देखता है—मिट्टी के घरौंदों से सिर्फ धुआँ-ही-धुआँ उठ रहा है। किसी-किसी के छाजन पर पीले-पीले फूल उग आए हैं। फिर उनको घेरे नीला-नीला धुआँ—दूर-दूर तक यही दृश्य। वह नीचे उतर आता है और पोखरे की ओर टहलने निकल जाता है। गढ़ के अहाते से बाहर होता है तो देखता है कि सूरज सिंह, बिहारी, बेनीमाधव और नबी मियाँ भी गोधन के लिए

चाय की गुमटी पर खड़े हैं। वह कतरा कर निकलना चाहता है कि सूरज सिंह पान की गिलौरी गाल के हवाले कर आगे बढ़े चले आते हैं।

'बी० डी० ओ० साहब को नमस्ते!'

'नमस्ते, नमस्ते! कहिए, कहिए बाबू सूरज सिंह, सब खैरियत तो है?'

'बस, आपकी कृपा है। आज आप बहुत देर कर टहलने निकले।'

'हाँ, पाठकजी महाराज आकर बैठ गए थे—इसीलिए बाहर निकलने में देर हो गई।'

वे पाँचों पाठकजी का आना और जाना देख रहे थे—इसीलिए बाहर ही नरेन्द्र का इन्तजार कर रहे थे। गोधन को छोड़कर चारों नरेन्द्र के पीछे हो लिये। कुछ देर को खामोशी। सिर्फ जूतों की चरमराहट। फिर बेनीमाधव इस दमघोंट खामोशी को भंग करता है—'बी० डी० ओ० साहब, इस विशाल पीपल वृक्ष को आप देखते हैं न!'

'हाँ, क्या बात है?'

'इसके पत्ते अब एक न बचेंगे। अमौना ताल इलाके के किसान अब इसी वृक्षतले आकर यहाँ सत्याग्रह करनेवाले हैं और इसी वृक्ष के पत्ते खा-खाकर अपनी क्षुधा शान्त करेंगे।'

'ऐसा क्यों?....'

'नहीं तो राशन की दूकान वहाँ जल्द खुलवाइए। हार्ड मैनुअल लेबर स्कीम जल्द चालू कराइए, वरना कांग्रेस छोड़ सभी पार्टियाँ उनका साथ देंगी। नबी मियाँ का झंडा वहाँ गड़ गया। क्यों, नबी मियाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ या नहीं?'

'हाँ-हाँ, आप ठीक फरमा रहे हैं। किसानों के लहू से यह ब्लॉक ऑफिस रँग जाएगा—और यह ऑफिस ही नहीं, सारा इलाका भी !'—नबी मियाँ ने अपनी खसखसी दाढ़ी को सहलाते हुए कहा।

फिर दमघोंट खामोशी।

शिवाला, संस्कृत विद्यालय पार कर सभी ब्रह्मस्थान तक पहुँच रहे हैं। ब्रह्मस्थान पर किसी नई बहू की पालकी लगी है। रंग-बिरंगे कपड़े पहने औरतें गीत गाती हुई ब्रह्म देवता को पूज रही हैं। जिगना के रिक्शे पर भी पर्दा लगाए कुछ औरतें आ रही हैं। उधर हिरामन का छोटा भाई डिम-डिम-डिम-डिम ढोल बजाए जा रहा है। टिमिला तु-तु-तु-तु—तू-तू-तू सिंघा फूँक रहा है। नई बहू की डोली अब ब्रह्म पूजकर गाँव में परछन के लिए जाने को उठने ही वाली है।

बात बदलने के लिए नरेन्द्र अपने को उस दृश्य में बझाए हुए है। सभी उधर देखते हुए आगे बढ़ते हैं तो बिहारी ने सोचा कि उसे भी कुछ बोलना चाहिए और फिर बोलने ही लगा—'देखिए बी० डी० ओ० साहब, पैरवीकारों का हुजूम खड़ा है—इसलिए सोच-विचार कर राशन की दूकान दीजिए। हमारे ख्याल में गोधन साह को छोड़कर कोई वहाँ का कोटा उठा नहीं पाएगा। इलाका बहुत बड़ा है और माल बहुत ज्यादा उठाना पड़ेगा। इसलिए जिसके पास पूँजी नहीं, वह इस काम को नहीं कर सकेगा। समझे साहब ?....फिर गोधन साह के पास अपना ट्रक भी है। इससे काम उसका बहुत हल्का हो जाएगा। यह बात भी सोचने की है।....'

'हाँ-हाँ, जरूर।'—सभी ट्रकवाली बात पर जोर देने लगे।

नरेन्द्र चुप है। आगे बढ़ता चला जा रहा है। पीछे चारों को छोड़कर

अब एक हुजूम चल रहा है। अब तक किस्म-किस्म के लोग उस हुजूम में दाखिल हो गए हैं इसलिए सूरज सिंह मटकी मारता है और उसके अन्य साथी खामोशी बरतने लगते हैं। कोई हाथ भाँजते हुए टहल रहा है तो कोई दुलकी चाल चल कर उस हुजूम में दाखिल हो जाता है। आखिर यह बात क्या है! बी० डी० ओ० साहब के पीछे यह काफिला—जरूर कोई वाकया हो गया—फिर वह भी साथ हो लिया—कुछ दूसरे से फुसफुसाते हुए—शायद कोई राज पता चल जाय। अब तक आखिरी पाँत में गोधन भी शामिल हो गया है। एक बार बी० डी० ओ० पीछे मुड़कर देखता है तो जाने कितने हाथ अभिवादन को उठ गए। वह घबड़ा-सा जाता है। यह कौन आफत है भाई! गाँव के चारों नेता मन-ही-मन खिल रहे हैं—उनके साथ इतने हो लिये हैं।'....................

''''नरेन्द्र को नजात मिली।

अस्पताल का फाटक आ गया।

'अच्छा, तो आप जायँ, मुझे अब जरा डाक्टर साहब से काम है। मैं तो यहीं रुक जाऊँगा। सभी को प्रणाम।'—वह जल्दी-जल्दी अस्पताल के अहाते में घुस जाता है। भीड़ छँट जाती है। नबी मियाँ पान की गुमटी पर खड़े हो पान खाने लगते हैं—गोधन चट कैप्स्टन सिगरेट का एक पाकिट खरीद कर वहाँ बचे हुए लोगों को पिलाने लगता है

'आइए-आइए, बी० डी० ओ० साहब, आज बड़े परीशान दीख रहे हैं।' —डाक्टर साहब ने नरेन्द्र को देखते ही तपाक से कहा।

'अजी, कुछ न पूछिये। कहीं भी चैन नहीं। अभी देखा नहीं—एक बारात ही मेरे साथ चल रही थी।'

'हाँ, देख तो मैं बहुत देर से रहा था, मगर इसमें आश्चर्य क्या? इलाके के राजा जो ठहरे! आपके एक इशारे पर यहाँ का इतिहास बदलता है।'

'खैर, रहने भी दीजिए—बेवकूफ बनाने को सिर्फ मैं ही बचा हूँ? —यहाँ तो भाई, पॉलिटिक्स—पॉलिटिक्स। —हर जर्रे में पॉलिटिक्स व्याप गया है। यहाँ के लोगों की अब वही एक खुराक रह गया है। क्या बताऊँ, जिधर जाओ उधर ही राजनीति। सोचा था—इस गाँव में कुछ राहत मिलेगी। पुराना घर, अपने लोग-बाग—मगर हाय राम! सब जगह वही लीला। पुराना शांत वातावरण तो अब कहीं मिलता नहीं—हर टोले में तनाव, हर कोने में दाव-पेंच।'

'कुछ मैं भी सुनूँ!'

'वही राशन की दूकान लेकर हो-हल्ला मचा है। कोई सोहन की पैरवी कर रहा है तो कोई गोधन की, कोई परानपुर के साह की—और छोटे-छोटे बरसाती मेढ़क तो जाने कितने कूद रहे हैं। बाहर निकलना मुश्किल, घर में एक पल चैन से बैठना मुश्किल। यदि लोगों से मिलना छोड़ दूँ,

पहरा बिठा दूँ, तो दूसरी आफत। राजधानी से वहाँ तक तारों का ताँता लग जाय—बी० डी० ओ० कामचोर है !'

'खैर, छोड़िए इन सारी बातों को। जब तक जिन्दगी है, तब तक झमेला है। ''''''''अजी, बिन्दा प्रसाद के यहाँ चलना है या नहीं ?'

'क्यों, वहाँ क्या है ?'

'लीजिए, आप भी खूब भुलक्कड़ हैं। अजी, वहाँ आज उसका तिलक न है। भोज के लिए उसके पिता का निमंत्रण आया है।'

'यह दूसरी आफत !'

'क्यों ?'

'मैं वहाँ जाना नहीं चाहता। उस हरामजादे के यहाँ भोज खाने का मुझे जरा भी मन नहीं। उस पापी के यहाँ।'

'यही न आप गलत काम कर रहे हैं। यहाँ तो गाँव का एक समाज है, उस समाज के आप एक प्रमुख अंग हैं। ऑफिस में जो भी उसकी बदनामी हो, सामाजिक जीवन में तो कुछ शिष्टाचार निभाने ही पड़ते हैं। जाकर हाजिरी दे आने में क्या हर्ज है ? हाँ, सरकारी फाइल पर उसके प्रति आपका जो रुख है उसमें तो वहाँ जाने से कोई तबदीली होने की नहीं।'

'खैर, चलिए, मगर मैं वहाँ खाऊँगा नहीं।'

'खाऊँगा तो मैं भी नहीं। मगर''''''''

'चलिए, हाजिरी देकर लौट आएँगे।'

बिन्दा प्रसाद ओवरसियर का पक्का मकान आज जगमगा रहा है। किटसन लाइट सब जगह टँगा है और अन्दर दालान में गाँव के तथा इलाके के मानिन्द लोग फर्श पर जमे बैठे मल्लिक-मण्डली का गाना सुन रहे हैं। पान और इत्र का दौर पर दौर चल रहा है। बाहर लौंडा नाच रहा है। उसको घेरे एक बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई है। 'झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में—बरेली के बाजार में—हाँ-हाँ, बरेली के बा....जा....र....में' —गाता जब उसकी कमर खम खाती तो सभी "अयहय अयहय" चिल्लाते झूम उठते और दो-चार दिलफेंक रसिया एक-एक रुपये का नोट उसके ब्लाउज में पिन कर देते। फिर तो वह झूम-झूम कर और नाचने लगता और पैर के घुँघरू से न जाने कितना बेसुरा बोल निकालने का प्रयास करता। लौंडा उमरगर है और उसकी आवाज फट गई है; मगर उसके नखरे दिलफेंकों को लुभा देने को काफी हैं। देखते ही देखते उसका ब्लाउज नोटों से भर गया।

बी० डी० ओ० साहब और डाक्टर साहब जिस समय वहाँ पहुँचे उस

समय बाहर और भीतर दोनों जगह नृत्य-गान-मण्डली खूब जमी हुई थी। दालान के अन्दर घुसते ही उस मण्डली में खलबली मच गई। लोग-बाग खड़े होने की कोशिश करने लगे तो दोनों झट कोने में ही बैठ गए। मगर बिन्दा प्रसाद के पिता मुंशी रामलखन लाल झट उठकर वहाँ चले आए और दोनों को बड़े इसरार से उठाकर आगे ले जाकर बिठाया। मल्लिक-मण्डली से प्रणाम-पाती हुई और कुछ नये जोश-खरोश से वह मण्डली तानपूरा तथा तबले के ताल पर गाने लगी। इंतजामकार शामलाल ठीकेदार थे। इत्र का फाहा पेश कर तबक लगे पान की गिलौरियाँ वहाँ पेश कर दीं। कुछ क्षण बाद सरकते-सरकते पाठकजी महाराज बी० डी० ओ० साहब के नजदीक आ बैठे। उधर से युनाइटेड फ्रांट के लीडरान—सूरज सिंह, बिहारी, बेनीमाधव तथा नबी मियाँ भी उनके समीप आकर जम गए। इनके अलावा इलाके के जो-जो लोग अपनी प्रधानता बढ़ाना चाहते रहे, वे सब घुसकते-घुसकते उनके इर्द-गिर्द जम गए।

नरेन्द्र इस चक्रव्यूह से ऊब रहा है। यह तो खैरियत है कि मल्लिकजी ऐसा तगड़ा आलाप ले रहे हैं कि सब की हेकड़ी गुम है, नहीं तो अबतक कोई-न-कोई उसके कानों में फुसफुसाना भी शुरू कर देता। बड़े मल्लिकजी रुकते तो छोटे मल्लिकजी वहीं से कड़ी लोक लेते और अपना राग अलग से छेड़ बैठते। इस सिलसिले में नरेन्द्र को राहत मिलती रहती।

थोड़ी देर बाद नरेन्द्र ने डाक्टर साहब को इशारा किया और झट खड़ा हो बैठे हुए लोगों को कंधे से हटाते हुए बाहर निकल आया। पीछे-पीछे डाक्टर साहब भी चलते बने। बाहर बिन्दा प्रसाद के पिताजी ने उनको जाते

देखा तो दौड़ पड़े—'हुजूर, मुझसे क्या गलती हुई कि आप बिना जूठन गिराए भागे चले जा रहे हैं ?'

'नहीं-नहीं, ऐसी बात नहीं। मेरे यहाँ शहर से कुछ मेहमान आनेवाले हैं। इसीलिए इतनी जल्दी चला जा रहा हूँ। शायद वे लोग आ भी गए हों।'

'वाह ! तो हमारे घर की शोभा कैसे बढ़ेगी ? पत्तलें लग ही गई हैं—एक पाँत तुरत बैठेगी, आप पहली पाँत में हो.....'

'मुंशीजी, यह तो घर की बात है। मैं तो पान खा ही चुका, अब खाना के लिए माफ करें।'

थोड़ी देर तक आरजू-मिन्नत चलती रही। तब तक पाठकजी भी पहुँच गए। सोने में सुहागा हो गया। उन्होंने झट कहा—'नहीं-नहीं, ऐसे जाना ठीक नहीं। मुंशीजी, कुछ मिठाइयाँ झट मँगाइए—कुछ भी आप चख लें—और हाँ, सत्यनारायण की कथा का प्रसाद भी।'

पँचमेल मिठाई चाँदी की दो तश्तरियों में झट चली आई—साथ-साथ प्रसाद भी। एक बी० डी० ओ० के लिए तथा दूसरी डाक्टर के लिए। दोनों खड़े-खड़े कुछ चख लिये। फिर पानी-पान। तब तक तिलक चढ़ चुका था और मुंशी रामजतन लाल बिन्दा प्रसाद को झट बाहर लिये आए और बी० डी० ओ० साहब के पैर छूकर प्रणाम करवाया।

पूरी आवभगत के बाद दोनों बाहर निकल आए तो लालटेन लिये मंगर पाँड़े आगे-आगे चलने लगे और मुंशी रामजतन लाल अपने स्टाफ के साथ कुछ दूर तक उन्हें पहुंचा भी आए।

'पाँड़ेजी, आप जाइए—खाने में देर हो जाएगी। हमारे पास टॉर्च है।'—थोड़ी दूर जाकर नरेन्द्र ने कहा।

मगर पाँड़े जा नहीं रहे थे मगर दोनों जब बरजिद हो गए तो वह लौट आए।

'डाक्टर! क्या तमाशा है—दुनिया जानती है कि बिन्दा प्रसाद ओवरसियर घूस के पैसे से यह टीमटाम खड़ा किये हुए है, मगर सभी इसी टीमटाम के पीछे अन्धे हैं और यही नहीं, समाज में उसे एक ऊँचा ओहदा दे रहे हैं। देखा आपने?—वहाँ आज कौन न था! इलाके के सभी मानिन्द लोग। हाय री दुनिया!'

'नरेन्द्र बाबू, आप इतना ही कहकर चुप क्यों हो गए? जानते हैं आप? इसकी शादी एक इज्जतदार घराने में हुई है और तिलक में इसे नकद दस हजार रुपये मिले हैं—चाँदी के सामान और कपड़े अलग। भाई, रुपया है तो सब कुछ है—मान-मर्यादा, सुन्दर बीवी और ऊँची कुर्सी भी।'

रास्ते में कुत्ते भौं-भौं करने लगते हैं। डाक्टर छड़ी घुमाता है—वे भागते हैं। फिर दोनों आगे बढ़ते हैं। पहले गढ़ मिलता है। नरेन्द्र जिद कर बैठा—'डाक्टर साहब, आज यहीं खाना खाकर जाइए। बिलटू ने बगेरी और पूड़ी बनाई है—खीर भी।'

'नहीं-नहीं, इसे शहर के मेहमानों के लिए रिजर्व रखिए!'

'आइए-आइए, आज का मेहमान आप ही बन जाइए।'

दोनों हँसते-हँसते बारजे पर पहुँच जाते हैं।

'टेनी बाबा ! उस दिन बिन्दा प्रसाद के यहाँ आप खूब जमे रहे। देखा, बड़े ध्यान से मल्लिकजी का गाना सुन रहे थे।'—नरेन्द्र ने लेटे-ही-लेटे कहा।

'हाँ, लोग-बाग बिन्दा प्रसाद के बाहरी जशन के चूमचाम पर रीझ रहे थे और मैं रघुनाथ मल्लिकजी के गाने के साथ-ही-साथ उसके दादा को याद कर रहा था। हू-ब-हू यही चेहरा, गाने का यही अंदाज। रावसाहब के दरबार के प्रमुख अंग। बिना उनके कोई मजलिस नहीं जमती। लाख तवायफें गातीं, मगर उनका गाना सुने बिना रावसाहब का मन नहीं भरता।'

बरसात की वह सुखद रात्रि। रावसाहब का प्रिय राग जियाजवन्ती गाकर अभी-अभी मेहर उठी थी। उस रात के हरसिंगार में रँगी उसकी बारीक मलमल की साड़ी बड़ी सुहानी लग रही थी। अपनी साड़ी के पल्ले को सँभालते हुए उसने फरमाइश की—'मल्लिकजी, अभी हमारी मजलिस टूटेगी नहीं। लिल्लाह ! एक आपका भी हो जाय। रावसाहब

का मन बिना आपका गाना सुने मानता ही नहीं। आज अन्त आप से ही हो।'

रावसाहब मुस्कुरा दिए। मल्लिकजी ने तानपूरा उठाया तो रावसाहब ने अपने खास दरबारियों की ओर इशारा किया—'नजदीक चले आइए। उधर क्या अकेले-अकेले बैठे हैं ?'

दो-चार दरबारी जो उस मजलिस में बैठे थे नजदीक सरक आए। उनकी खास महफिल में तो दो-चार मुँहलगे ही बैठते थे। 'पानदान में पान भरवा लाओ—नौकर से कहो, उगलदान साफ करे—मेहर की बाँदियाँ कहाँ सोई पड़ी हैं—उन्हें जगा लाओ—बत्ती गुल हो रही है—फर्राश से कहो, इसमें और गैस भर दे'—बस, बीच-बीच में यही सब आॅर्डर चलता रहता।

मल्लिकजी ने उस रात एक बड़ा सुन्दर राग गाया—ऐसा मीठा राग कि जब उन्होंने खत्म किया तो मेहर ने तपाक से कहा—'ओह ! आज तो आपने समाँ बाँध दिया। सुभानअल्ला ! क्या खूब····!'

कुछ देर गुफ्तगू के बाद रावसाहब जूता पहन जब अपने शयनकक्ष में जाने को हुए तो मेहर ने उन्हें बाहर बरामदे में ले जाकर कहा—'आइए, आज बरसात की बड़ी प्यारी रात है। खुदा का शुक्र, चाँद भी निकल आया है। देखिए, बादलों से इसकी आँखमिचौनी कितनी प्यारी-प्यारी-सी लगती है। कुछ देर यहीं बैठें।'

'वाह ! सोना नहीं है क्या ?'

'सोने के लिए तो सारी रात पड़ी है !'

कुछ देर की खामोशी। उसकी पतली-पतली कोमल उँगलियाँ रावसाहब के पुष्ट कंधे पर हौले-हौले चल रही हैं।

'हाँ, एक बात पूछूँ—यदि आप इजाजत दें!'

'एक नहीं—दो-दो। इजाजत ही इजाजत है।'

'राजरानी से आपको मिले कितने दिन हो गए?'

'याद नहीं। तुम्हारे आने के बाद गढ़ में मैं गया ही कहाँ?'

'उफ, तो आज मेरी एक बात मान लें—आज रात आपको उन्हीं के यहाँ रहना है।'

'क्यों?'

'मेरा इसरार जो है!'

रावसाहब चुप हो गए। बरामदे में बैठे-बैठे आकाशचारी चाँद को देख रहे हैं, मगर आँखें कहीं और हैं।

'बोलो मेरे राजा!'—मेहर की नारी आज भाव-विह्वल हो रो पड़ी।

'अरे, यह क्या? अभी चला जाऊँगा। शुक्र मनाओ, उससे भेंट तो हो जाए। वह पहरे के अन्दर तो न हो!'

'पहरे के अन्दर?'

'हाँ, सब जान कर भी अनजान न बनो मेहर!'

दमघोंट खामोशी। फिर मेहर ताली बजाती है। दो-चार बाँदियाँ हर कोने से दौड़ी चली आती हैं।

'बाहर देखो, मुंशी टेनोलाल घर तो नहीं चले गए। अभी बुला लाओ उन्हें। यदि घर जा चुके हों तो किसी को दौड़ा कर उन्हें आधे रास्ते से लौटा बुलवाओ।'

टेनो लाल फाटक के बाहर चले गए थे। उसमान उनके पीछे-पीछे दौड़ा—'चाचा, अन्दर बुलाहट है—बेगम ने याद किया है।'

टेनो लाल को काटो तो खून नहीं। या अल्ला! इतनी रात गए कौन ऐसी आफत आ गई जो उनकी बुलाहट हुई! वे झट लौट पड़े और हाँफते हुए अन्दर पहुँच कर आवाज लगाई—'हमीदा! क्यों, खैरियत तो है! मैं हूँ टेनो।'

'हाँ-हाँ, चले आइए। आप से पर्दा कैसा?'

दोनों सँभल कर अलग-अलग बैठ गए हैं।

'सब खैरियत है। हाँ, जरा करीब आइए। उसमान से कहिए कि जोड़ी अभी कसकर लाये और आप रावसाहब को महल में पहुँचाते घर चले जाइएगा। इतनी तकलीफ गवारा करने के लिए माफी चाहती हूँ।'—मेहर ने बड़ी आजिजी से कहा।

'वाह! आप तो ऐसी बातें कर रही हैं जैसे कि मैं कोई गैर हूँ। आपका हुक्म सर-आँखों पर।'

रावसाहब ने रास्ते में एक बात भी न की। बुत बने गाड़ी में बैठे रहे।

सदर दरवाजे पर ही गाड़ी रुकवा कर उसमान से कहा—'हम यहीं से पैदल चले जाएँगे—तुम गाड़ी वापस ले जाओ।'

दोनों गढ़ पर पहुँचे। कुछ पहरेदार सो रहे थे—कुछ ऊँघ रहे थे और

कुछ पहरे पर थे। मालिक को पहिचान कर उन्होंने सलामी दागी। रावसाहब चट अन्दर घुस गए। पीछे-पीछे टेनी लाल।

'जूता न बजाओ····धीरे-धीरे। सायँ-सायँ बोलो—इस रास्ते नहीं—उस रास्ते····अंधेरा है—कोई हर्ज नहीं—साँकल लगी है—धीरे-से खोल लो। एक ड्योढ़ी—दो-तीन-चार-पाँच-छह-सात—आखिरी ड्योढ़ी—धीरे-से खोलना—फाँफर में हाथ डालकर कड़ी खोल लेना—तुम जाओ—मैं अन्दर चला जाऊँगा।'

घोर रात्रि—निस्तब्ध वातावरण। शुक्र है खुदा का—अन्दर से साँकल नहीं लगी है—रावसाहब अन्दर घुसकर साँकल चढ़ा देते हैं। खट की आवाज होती है। बरामदे में वह सोई है। वह जाग पड़ती है—'कौन ?'

'चुप ! —मैं !' —रावसाहब उसके कंधों को पकड़ लेते हैं।

'ओह ! आप ? —मैं सपना तो नहीं देखती !'

वह चिहाकर इर्द-गिर्द देखने लगती है। बाहर आकाश में चाँद अभी भी आँखमिचौनी खेल रहा है।

'नहीं-नहीं, अचम्भित न हो। मैं हूँ। हाँ····हाँ····मैं !'

वह उनके पैरों पर गिर पड़ती है। वह उसे अंक में लगा लेते हैं।

यह रात्रि राजरानी को कभी न भूलेगी। बिना माँगे मुराद मिली उसे। वह गिरी जा रही है। उसके जिस्म में कोई ताकत नहीं। रावसाहब उसे सँभालते रहते हैं—गिरने से बचाते रहते हैं। मगर वह सँभाल में ही नहीं आती। उसे अपने पर विश्वास ही नहीं होता। वह समझती कि उसकी आँखें अभी भी उसे धोखा दे रही हैं—जैसे सदा से देती आई हैं।

मेरे मालिक, मेरे राजा ! तू वही न है—कोई गैर तो नहीं ? मैं स्वप्न तो नहीं देखती ? मुझे यकीन ही नहीं होता कि तुम—हाँ-हाँ, तुम कभी मेरे पास आओगे भी। ओह ! चाँद किधर से उग आया ! मेरा घर कैसे रौशन हो गया ! वह उनके सर को, ललाट को, बालों को, कंधों को, छाती को, भुजाओं को छू-छू कर इतमीनान करने लगी कि क्या सचमुच यह वही है न जिसकी याद में वह दिन-रात घुलती जा रही थी—जिसे एक बार भी देख लेने को अपनी आँख की रोशनी बचाए रखना चाहती थी—हाँ-हाँ, उसे इतमीनान हो गया—यह वही है—वही—कोई छली नहीं—सचमुच वही।

नरेन्द्र तकिया छोड़ झट खड़ा हो गया—'मैं तो अंधेरे में भटक रहा था बाबा ! मुझे जरा भी पता न था कि मेहर इतनी महान थी। आज मेहर मेरे मन में एक इज्जत पा गई। उसमें नारी का ईर्ष्या-द्वेष एकदम न था। बड़ी ऊँची किस्म की हमदर्द औरत थी।'

'इसमें क्या शक ! यही नहीं, वह हिन्दुओं के सारे त्योहार मनाती। होली में खूब होली मचती, एक हफ्ता पहले से ही अबीर-गुलाल उड़ते रहते। तीज करती, जन्माष्टमी के दिन निर्जला रह कर मध्यरात्रि उपरान्त प्रसाद पाती—उफ, कुछ न पूछिए—कैसी धर्मात्मा थी वह मेहर !'—टेनी लाल उसकी तारीफ करते चले गए। नरेन्द्र सब सुनता रहा।

जिगना और बलचनवा रिक्शा चलाकर अच्छा पैसा कमा रहे हैं। गोधन साह को डेढ़ रुपये फी रिक्शा देकर भी वे डेढ़-डेढ़ रुपये बचा लेते हैं। यानी तीन रुपये रोज। नब्बे रुपये महीना। नब्बे रुपये—जहाँ एक दिन फाकाकशी रहती थी। अब उनके घर का रंग बदल रहा है। छप्पर का फेरवट हो गया है और दीवालें लीपी-पोती दीखती हैं। सुखिया की दादी की खाट की सुतरी अब ठीक से बीनी हुई है और घर में कुछ अनाज भी दीखता है। सुबह-शाम डोमन और सुखिया की दादी—दोनों मंगर पाँड़े का धन्य मनाते हैं जिनके जरिए उनकी रोजी-रोटी का सवाल हल हो गया। जिगना और बलचनवा अब खूब खाते हैं और उनके शरीर पर कुछ गोश्त चढ़ने लगा है।

ठक-ठक-ठक।

'कौन-कौन ?'

'डोमन !—ओ डोमन !'

'कौन—पाठक बाबा ? आया—आया।'

दौड़ कर झट दरवाजा खोलता है।

'महाराज जी ! आज इतने भोर-पराते कैसे-कैसे आना हुआ ? मैं तो आने ही वाला था।'—डोमन हाथ जोड़े खड़ा हो गया। लुंज शरीरवाली सुखिया की दादी अपनी खाट पर बैठी-बैठी अपने 'फाटक बाबा' की जय मनाने लगी।

'इधर मैं दिशा-फराकत के लिए निकला था। सोचा—तुम्हें भी देखता चलूँ। जिगना-बलचनवा खूब रिक्शा चला रहे हैं—बड़ी खुशी की बात है। स्टेशन पर तो मैं उनका रिक्शा खोजकर पकड़ लेता हूँ और उसी पर चढ़कर गाँव आता हूँ।'

'महाराज जी की किरपा—जी-जो····।'

दोनों कुछ देर चुप रहते हैं; फिर पाठकजी ने कहा—'देखो डोमन, बाबूगंज के बाबू आज तुमलोगों को बहुत तंग कर रहे हैं। उनको मजा चखाना होगा। हमें ऐसा उपाय लगाना है कि उनकी सारी हेकड़ी गुम हो जाय। देखो, ग्रामपंचायत का चुनाव आ रहा है। उसमें मैं मुखिया के लिए खड़ा हो रहा हूँ। सुनता हूँ, बाबूगंज से दलगंजन सिंह भी खड़े हो रहे हैं। उन्हें सीधा रास्ता दिखा देना है। मैं चाहता हूँ, सब खेत-मजदूर एक होकर अपना जायज हक उनसे माँगें।'

'जरूर बाबा—जरूर····जो हुक्म।'

'तो आज शाम हमारे दालान पर चले आओ। वहीं औरों को भी बुलाया है। सारी बातें तय हो जाएँगी।'

इसी बीच जिगना एक और खाट निकाल लाया और उसपर फटा-सा

गंदा गमछा बिछा दिया तो डोमन ने कहा—'महाराज जी, इस पर बैठ जायँ—हमारी कुटिया पबित्तर हो जाय।'

'नहीं-नहीं डोमन, किसी दूसरे दिन आकर इतमीनान से बैठूँगा—अभी जरा चमटोली जा रहा हूँ।'

'महाराज की जैसी इच्छा।'

पाठकजी झट बाहर निकल आए और शाम की सभा में आने के लिए फिर से याद दिला कर आगे बढ़ गए।

चमटोली में घुरफेंकन के दालान में धनिया बिलख-बिलख कर रो रही है। उसे सोनपति की माँ समझा रही है। बगल ही में भगत और घुरफेंकन बैठे हैं—दो-चार और चमार वहाँ जुट गए हैं और उसे सान्त्वना दे रहे हैं। इसी समय पाठकजी अपनी छड़ी घुमाते पहुँचते हैं। उनके साथ चमटोली के छोकरे भी हो लिये हैं। उन्हें देखकर भगत और घुरफेंकन हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं।

'क्यों भगतजी, तुम आ गए—चलो, बड़ा अच्छा हुआ। तुम्हीं को मैं खोज रहा था।'

'हाँ, महाराज, कल रात ही में तो आया।'

'समय पर तुम आ गए। उफ, धनिया का दुःख देखा नहीं जाता। इसकी वेदना से छाती फट जाती है। वज्रहृदय भी इसे देखकर पिघल जाएगा।'—पाठकजी ने रोनी सूरत बना ली। धनिया उन्हें देखकर पुक्का फाड़ कर रोने लगी।

'देखो, रोओ नहीं हिरामन की माँ। तुम्हारे दुःख के साथ सारा गाँव है—सारा जवार। हम सब तुम्हारे लिए दुःखी हैं और तुम्हारा दुःख

बँटाने को आतुर बैठे हैं। पुलिस ने तुम्हारे साथ न्याय नहीं किया। मगर पाठक बाबा तो हैं—तुम्हारे साथ न्याय होगा।'

'बाबा, न्याय लेकर यह चाटेगी ? न्याय हो या अन्याय हो—उसका बेटा तो चला गया—और वह भी कमासुत। सब घरवाले दाने-दाने को मोहताज हो रहे हैं। कोई खोज-खबर लेनेवाला नहीं। आपलोग गाँव के नेता बनते हैं मगर आपने इसकी कोई सुधबुध नहीं ली। हिरामन के बूढ़े माँ-बाप, जवान औरत, गोद में खेलते हुए बच्चे सभी भूख से तड़प रहे हैं, मगर इनका कोई पुरसाँहाल नहीं। हम गरीब लोग—हमारे पास न बस्तर है—न अनाज। न अपना पेट भरता है न दूसरों का पेट भर पाते हैं। उफ.....'—भगत भी फफक कर रो पड़ा।

पाठकजी ने दस-दस के दो नोट निकाल कर धनिया के फाँड़ में फेंकते हुए कहा—'धनिया ! घबड़ाओ नहीं। विपत्ति में धीरज रखो। अबकी बारी चाँट कमिटी की मीटिंग में नहर के बगलवाला चाँट तुम्हारे नाम से बन्दोबस्त करा दूँगा। जितना तुम और तुम्हारी पतोहू आबाद कर सकोगी, उतना चाँट पहले तुम्हें दिलाकर तो दूसरे को दिलवाऊँगा। मैं आज ही नहर ऑफिस जाता हूँ और नहर एस० डी० ओ० से मीटिंग के पहले ही पैरवी कर देता हूँ। समझी ? रो नहीं।'

'जय हो फाटक बाबा ! जय हो !'—धनिया के आँसू पोंछती हुई सोनपति की माँ चिल्लाने लगी।

'देखो, बाबा का पैर पड़ते ही तुम्हारा दुःख भाग गया—अब तुम्हारा बेड़ा पार है।'—भगत ने भी सान्त्वना दिलाई।

'अरे, बाबा चाहेंगे तो क्या नहीं होगा ?—सब होगा—सब।'—घुरफेंकन ने भी धीरज दिलाया।

धनिया के आँसू तो थमते ही न थे। वे तो आजीवन बहते ही रहेंगे। उन्हें अब कौन रोक सकता है ? उसकी विपत्ति को अब कौन बाँट सकता है ?

फिर बाबा ने भगत और घुरफेंकन को अलग ले जाकर समझाना शुरू किया—'देखो, हाथ पर हाथ रखकर चुपचाप बैठे रहने से कुछ न होगा। बाबूगंज के बाबुओं के खिलाफ एक आन्दोलन खड़ा करना होगा—तुम्हें अपने हक की माँग करनी होगी। 'खेत जोतनेवाला ही खेत का मालिक हो !'—यही हमारा नारा होगा। शहर में, बड़े-बड़े कारखानों में मजदूरों को जो सुविधा दी जाती है, वही सुविधा तुम्हें भी मिले—तभी तुम काम पर जाओ। यह सब माँग पेश करनी होगी—समझे ?'

'हाँ बाबा, आप ठीक कहते हैं। कुछ-न-कुछ तो करना ही है—केवल कचहरी के सहारे कुछ न होगा। मगर हमारी कमर टूट गई है—आप आगे-आगे रहें तो हम पीछे-पीछे....'

'जरूर, मैं तुम्हारा पूरा साथ दूँगा—तुम घबड़ाओ नहीं। मैं आन्दोलन खड़ा कर दूँगा। तुम बस, तैयार रहो। आज रात हमारे दालान में आओ—और सब जुट रहे हैं—वहीं सब तय किया जाएगा।'

पं० वीरमणि पाठक आज मूँछ पर ताव दे रहे हैं। दलगंजन सिंह यदि मुखिया के चुनाव में उनको खिलाफत करना चाहते हैं तो वह भी उन्हें मजा

चखा देंगे । जीत और हार तो हरिजनों के वोट पर निर्भर है । उनका एक भी वोट दलगंजन सिंह को न मिलेगा । हूँ-हूँ·······हरिजनों में ऐसा आन्दोलन खड़ा कर दूँगा कि उनके सारे वोट मेरे बक्से में गिर जाएँगे । बाबूगंज वालों ने दरार डाल दी है—मैं उसमें काँटा बो दूँगा ।

....

....

पाठकजी के दालान में चमटोली, दुसाध टोली और मुसहर टोली के हरिजन जुटे हैं । बूढ़े और जवान सभी सभा की कार्यवाही में दिलचस्पी ले रहे हैं । पाठक महाराज लेक्चर पिलाते जा रहे हैं—'भाइयो ! मैं तुम्हारे हक के लिए लड़ूँगा—जान दे दूँगा । तुम दाने-दाने के मोहताज हो रहे हो और दूसरे तुम्हारी मिहनत पर नवाबी कर रहे हैं—ऐश-आराम में लीन हैं । अब स्वराज्य आ गया । सबका हक बराबर है—माँग बराबर । ····कल से दलगंजन सिंह के खेत पर सत्याग्रह शुरू करो । नारा लगे—खेत जोतनेवाला खेत का मालिक होगा, खेत-मजदूर को कारखाने के मजदूर की सारी सुविधाएँ दो । हमारी माँगें पूरी हों, नहीं तो खेत की बोअनी-कटनी बन्द करो । ·········'

पाठकजी ने घंटों अपनी स्पीच झाड़ी । वैदिक काल से लेकर आज तक वर्णाश्रम प्रथा में फैली बुराइयों का खाका खींचा और महात्मा गांधी के चेले उनके उत्थान के लिए क्या-क्या कर रहे हैं—उसका एक आकर्षक चित्र खड़ा कर दिया । उनके बाद भगतजी का भी भाषण हुआ और खेत-मजदूर आन्दोलन तथा पाठकजी का चुनाव-कैम्पेन एक साथ शुरू हो गया ।

इलाके में सरगर्मी छा गई। गाँव के कोने-कोने में—बाग-बगीचे में—दूकान-दालान में जहाँ दो-चार बन्धु जुटते—इसी की चर्चा होती। तनातनी बढ़ी—दीवालों पर स्कुलिया लड़के खली से नारे लिखने लगे। हाथ से लिख-लिखकर पोस्टर भी साटने लगे और पाठकजी के शब्दों में—'सचमुच, मजा आ गया' का वातावरण खौल उठा।

रामभजन सिंह के दालान में बाबुओं की बैठक जमी है। छोटे-बड़े सभी अपनी-अपनी राय दे रहे हैं। गर्मा-गर्मी बहस चल रही है।

'चाचा, मेढ़की को भी अब जुकाम होने लगा। देखते नहीं, भगत अपने गिरोह के साथ रोज गाँव के सीवान पर आकर नारा लगा जाता है। कहता है—सत्याग्रह करेंगे, नहीं तो हमारी माँगें पूरी करो। अजब हाल है। यह सब पाठक की बदमाशी है। हमारे खिलाफ नान्हों को भड़का रहा है।....।' —बन्दूकी ने रामभजन सिंह की ओर मुँह करके कहा।

'फिक्र न करो बन्दूकी! मेहर का राज पलटते हमें देर हो न हुई—भला पाठक किस खेत की मूली है! देखना, आसमान के गुब्बारे सदृश उड़ जाएगा। वह हमारे सामने क्या टिकेगा! दो-चार नान्ह जातों के वोट से भला वह मुखिया बन सकेगा? हरगिज नहीं। जमींदारी गई जरूर, मगर हमारी इज्जत और हमारा दबदबा बना-का-बना है। किसकी मजाल है कि हवेली के खिलाफ वोट करे! बोअनी-कटनी का समय आने दो। ये सभी बनिहार तुम्हारे पैरों पर गिरेंगे, नहीं तो भूखों मरेंगे। चुपचाप रहो।' रामभजन सिंह ने हुक्का गुड़गुड़ाते हुए कहा।

....

....

'अरे, ओ बिन्दा—बिन्दवा ! कहाँ गया रे ?'

'जी मालिक !'

'जरा चिलम झाड़ कर फिर से भर दे। बुता गया है।.....'—इस बार रामभजन सिंह ने अपने गले से पूरा मलगज निकाल कर बाहर थूक दिया।

'दलगंजन !'

'जी भइया !'

'तुमको डरना नहीं है, हिम्मत से खड़े रहना है। मैं एक दिन बाबूगंज तथा बसन्तपुर के मुख्य-मुख्य लोगों को बुलाकर समझा दूँगा—सब वोट ठीक हो जाएगा। हाँ, तुमको, बन्दूकी को, किसुना को घर-घर घूम जाना चाहिए। पाठक एक बार घर-घर घूम गया। जितना ठाकुर वोट है, उससे कम ब्राह्मण वोट भी नहीं है, फिर पाठक का भी बहुत पुराना सरोकार है इन दोनों गाँवों से। उसका पिता बड़ा चतुर दरबारी था। बहुतों को दरबार से धन-जमीन दिलवाया। इसलिए हमें सतर्क तो जरूर रहना है।'—रामभजन सिंह ने परीशानी जाहिर करते हुए कहा।

'जो हुक्म भैया का। आप जैसा कहें, वैसा ही मैं करूँगा।'—दलगंजन सिंह ने हाथ जोड़ कर सर नवा दिया।

'बाबूजी ! सौ सुनार की और एक लुहार को ! आप तो खुद भीतर से डर रहे हैं और बाहर से हमें शाबाशी दे रहे हैं। हमारे खेतों पर आकर भगत, घुरफेंकन, डोमन तथा अन्य हरिजन नारा लगा जाते हैं और आप

हमें कुछ भी करने से मना कर देते हैं। भला इनकी इतनी मजाल ! आप जरा इशारा दें और हमारा और बन्दूकी का गोल इन्हें मार-पीट कर भगा देगा।'—किसुना पागल की तरह कूदने लगा।

'फिर वही बेवकूफी की बात ! एक बार मार हुई—दारोगा साला मालोमाल हुआ और हम थाना-कचहरी दौड़ते-दौड़ते तबाह हैं। सेशन हो गया है और घर की सारी पूँजी दाव पर चढ़ गई है। अब तुम दूसरा खेल लेकर खड़ा होना चाहते हो। हमलोग इस बार बिक जाएँगे। धैर्य से काम लो किसुन ! जमाना बड़े आदमी के लिए बड़ा खराब आ गया है। ऐसा करना है कि साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे। समझे ?'—रामभजन सिंह फिर गुड़गुड़ी से कश लेकर कुछ सोच में डूब गए। और लोग अपनी राय देते रहे।

जब दालान की सभा बरखास्त हुई तो रामभजन सिंह ने दलगंजन सिंह को एक कोने में ले जाकर कहा—'देखो दलगंजन, ये लौंडे फिर खेल बिगाड़ देंगे। तुम एक काम करो—भोर-पराते गोधन साह को यहाँ बुलवाओ। मैं दूसरी चाल चल देता हूँ। पाठक को फाटक के रास्ते बाहर निकलवा दूँगा—समझे ?'

'जी भइया, जैसा हुक्म। आज ही उसे खबर भेजवा देता हूँ।'

भोरे-भोरे आम के बागीचे में रामभजन सिंह आधी धोती ओढ़े और आधी कमर में बाँधे नंगे बदन दातून करते टहल रहे हैं। सूरज का लाल चक्का अभी निकला नहीं है। मगर उसकी लाली पूर्व दिशा में फैल गई है। उत्तर से गोधन साहु आरी-आरी बढ़े चले आ रहे हैं। पीछे-पीछे बिन्दा है। नजदीक आने पर वह झुककर रामभजन सिंह को सलाम करता है।

'क्यों गोधन, अब तो तुम बड़े आदमी हो गए—ट्रक चल रहा है, रिक्शे चल रहे हैं; कोयले की दूकान थी ही, अब राशन की भी दूकान खुल गई है। अब तुम पुराने मालिक को क्यों याद करते?'

'नहीं मालिक, ऐसी बात नहीं। आप तो हमारे पुराने मालिक ठहरे, आप ही की हवेली से तो यह शरीर पला-पोसाया है। भला आपको मैं कैसे भूल सकता हूँ! अभी बिन्दा पहुँचा और मैं दौड़ा चला आया।'—गोधन ने बड़ी नम्रता से कहा।

'नहीं, आज तो तुमने बड़ी तत्परता दिखाई। हो तुम आदमी काम के। पुराना रिश्ता तो अब तुम्हीं निबाह रहे हो।''''अच्छा बिन्दा, जाकर

घर से बाल्टी-डोर लाकर इस कुएँ से पानी खींचो और मेरे मुँह धोने तथा नहाने का यहीं इंतजाम करो।'—रामभजन सिंह ने इसी बहाने बिन्दा को चलता किया। फिर गोधन को बड़े पोहलाते हुए कहा—'देखो गोधन, हमारी हवेली से तुम्हारे बाप-दादों से पुराना सम्बन्ध रहा है। तुमको मैं अपना बेटा समान मानता हूँ। तुमसे आज एक मदद चाहता हूँ।'

'मालिक, यह देह हाजिर है आपके लिए। हुक्म दिया जाय।'

'देखो, पाठक हमलोगों की इज्जत मिट्टी में मिलाने पर तुला है। इस इलाके के मालिक हम रहे—हमारे एक इशारे पर मेहर ऐसी नूरजहाँ का राज पलट गया—अब वह चाहता है कि इन दोनों गाँवों का मुखिया बन जाय। कांग्रेसी क्या बन गया है, अपने को बड़ा इज्जतदार समझने लगा है। आजकल वह नई चाल चल रहा है। हरिजन महाल तो हमारे खिलाफ हो ही गया है। तुम जानते हो हो, दोनों ओर से मुकदमा चल रहा है। किसुना ने हमें बरबाद कर दिया। इस परिस्थिति का नाजायज फायदा उठाकर वह खेत-मजदूर आन्दोलन खड़ा कर रहा है और हरिजनों का वोट अपने पक्ष में करवाने को साजिश रच रहा है।····सुना है, सोहन साह पाठक का सारा खर्च चला रहा है और तुम्हारे तो दोनों दुश्मन ही हैं।'

'मालिक, सोहन ने दुश्मनी क्या ठानी, अपने ही मुँह के भरे गिर गया। ऐसा ऊटपटाँग बी० डी० ओ० आया है कि चार-चार आदमी को राशन की दूकान बाँट दिया है। जहाँ एक को मुनाफा मिलता, वह चारों में बँट गया। सोहन साह बहुत पैसा ऑफिस और पाठक को चटा चुका था—अब थौस गया है। किसी को अब उतना मुनाफा न होगा।

बी० डी० ओ० का प्रमुख सलाहकार डाक्टर है—शायद उसी की राय से उसने यह चाल चल दी। सब चित हो गए।'

'तब !'

'सब बनियाँ बी० डी० ओ० से ज्यादा डाक्टर पर बिगड़े हैं।'

'हाँ, है यह बी० डी० ओ० बड़ा कानूनची। बात कुछ सुनता ही नहीं। पुराना रिश्ता सब भूल गया। मेरा परिवार न रहता तो आज यह कहीं का न रहता; मगर जब हमारा कोई काम पड़ता है तो कानून की बातें करने लगता है। इसी केस में डाक्टर या दारोगा से एक जबान तक न खोला। नहीं तो हम इतनी परीशानी में न पड़ते, इसीलिए मैं तो अब उसके दरवाजे पर झाँकी मारने भी नहीं जाता हूँ। बस, बी० डी० सी० की मीटिंग में हाजिर होकर झट अपनी घोड़ी पर सवार हो भाग आता हूँ। उसके यहाँ एक प्याली चाय भी पीने के लिए नहीं रुकता। एक बार वह ऐसी शिकायत भी कर रहा था—मगर मैं धीरे से चल दिया। ""और डाक्टर—वह तो पक्का हरामी है।'

'जी, तो क्या हुक्म होता है ?'

'हाँ, देखो, बात कहाँ से कहाँ चली गई ! तुम्हें सूरज, बेनीमाधव, बिहारी और नबी से खूब पटती है। वे सब कट्टर कांग्रेस-विरोधी हैं। कोई ऐसा जुगुत लगाओ कि वे भी कुछ हरिजनों को मिलाकर एक दूसरा आन्दोलन खड़ा कर दें ताकि हरिजनों में एक दरार पैदा हो जाय। हरिजनों का वोट यदि बँट जाय तो पाठक जीत नहीं सकेगा। क्या राय तुम्हारी ? ....'

'बात तो आप ठीक बोलते हैं। ऐसे तो पाठक जीत रहा है, मगर इस चाल पर शायद चित हो जाय!'

जीत की बात सुनकर रामभजन सिंह दहल गए। झट अपने में मजबूती लाते हुए बोले—'यह हरगिज नहीं होगा। दलगंजन जीत रहा है—तुम्हारा ख्याल एकदम गलत है। बनिया महाल तो पूरा हमारे साथ है।'

'नहीं सरकार, उसमें भी बँटवारा हो गया—सोहन साहु की पट्टी, रामचन्द्र साहु की पट्टी उसी के साथ जाएगी।'

'ऐसा क्यों?'

'क्योंकि वह उन्हें हर साल कोटा दिलवाता है—गेहूँ का, चीनी का।'

'अच्छा, अबकी दलगंजन मुखिया होता है तो उनका कोटा वगैरह सब साफ कर देगा। तुम अपनी पट्टी ठीक रखो और झट जाकर इन चारों को भिड़ा दो। मजा आ जाएगा। मेरी बात मानो—मैं भी पुराना खिलाड़ी हूँ।'

'इसमें क्या शक सरकार!'

'खैर, अब चुप हो जाओ—बिन्दा डोर-बाल्टी लिये चला आ रहा है। सारा काम बहुत चुपके से करना है। जाओ, अब भाग जाओ पट्ठे, अपने काम पर जुट जाओ।'

गोधन अपने पुराने मालिक को फिर झुककर सलाम कर चलता हुआ।

रामभजन सिंह ने गोधन को इतना लेक्चर पिला दिया था कि उसे बदहजमी हो गई थी। कब सारी बातें उगल दे, कोई ठीक नहीं—ऐसी हालत उसकी हो गई थी। बाबूगंज से छूटते ही वह सूरज सिंह के घर पर पहुँचा।

सूरज नहा-धोकर शहर जाने की तैयारी कर रहा था। पूछा—'क्या बात है सेठ ? आज इतना सबेरे क्यों आना हुआ ? खैरियत तो है !'—वह बाल झाड़ने लगा।

'हाँ, सब ठीकठाक है, मगर एक काम बड़ा गलत होने जा रहा है।'

'अरे, क्या ?'—वह अवाक् हो उसे देखने लगा।

'सारा हरिजन महाल आपलोगों के काबू से बाहर हो रहा है। आप-लोग सोए रहिए और उधर पाठक मैदान मार ले। सूरज सिंह, आपकी सारी नेताई रखी रह जाएगी और उधर पाठक मुखिया बन जाएगा। हरिजन आन्दोलन ऐसा खड़ा कर दिया है कि सारे हरिजन अब उसे नेता मानने लगे हैं और अपना सारा वोट उसी को देंगे।'

बाबू सूरज सिंह का राजपूती जोश उभर पड़ा।

'नहीं, ऐसा हरगिज न होगा। वह ब्राह्मण क्या खाकर जीतेगा ?'—वह सोच में पड़ गया।

'सोचिए-विचारिए नहीं—'नाचे गावे तूरे तान, तेकर दुनियाँ राखे मान'—टोला पर के पासी, बीन और दुसाधों को मिलाकर एक आन्दोलन आपलोग भी चला दीजिए ! हरिजनों का वोट तो कटे ! नहीं तो आप जानिए। टोला पर भी काफी वोट है। वहाँ अभी पाठक नहीं पहुँच पाया है। और वे सब लाल झंडा गाड़े नबी मियाँ का गीत गा रहे हैं। नबी मियाँ को मिलाकर फिर एक 'फरन्ट' तैयार हो जाए।'—गोधन एक साँस में कह गया।

'वाह गोधन ! तू भी 'पालीटीसियन' हो गया ! हमारे साथ रहते-रहते तुम पर भी रंग चढ़ गया !....तब....मगर आज तो हमें शहर जाना है।'

'शहर उस बेला जाइए। हमारा ट्रक जा रहा है, उसी पर चले जाइएगा। ड्राइवर की बगल में बैठकर।'

'वाह! यह बात तो जँच गई। ठीक है—तब तुम अपने घर चलो। नबी को बुला लो। हम बेनीमाधव और बिहारी को लेकर आ रहे हैं। नाश्ता-पानी का इंतजाम रहे। फिर वहीं 'पलेन' बने। तुम्हें राशन की दूकान दिलाकर हमारी भी गाँव में पूछ बढ़ गई है। लोग समझने लगे हैं कि पाठक के पास सत्ता है तो हमारे साथ भी कुछ लोग हैं। माना कि बी० डी० ओ० ने एक चाल चल दी और गुनाह बेलज्जत हो गई यह दूकान; मगर फिर भी तुम्हें खड़ा होने का एक मौका तो मिला। फिर आगे साल देखा जाएगा।....तो पाठक के बल को घटाने का यही सबसे अच्छा अवसर है। समझे?'

बाबू सूरज सिंह संतोष की साँस लेकर बड़े इतमीनान से कुर्सी पर बैठ गए और गोधन साह इमली तरे चाय के गुमटीवाले से उनके घर पर चाय और नमकीन पहुँचा देने का ऑर्डर देकर शिवाला की ओर बढ़ गए। रास्ते में बहुत खुश नजर आ रहे हैं चूँकि बिजली की रफ्तार से उनका सब काम 'फिट' होता जा रहा है। वोट का जमाना! हर क्षण स्थिति बदलती रहती है।

पानकुँवर मंगर पाँड़े की देह में तेल मालिश कर रही है। अक्सर जब वह शाम को थका-माँदा पहुँचता है तो पानकुँवर जिद ठान लेती और उसकी सारी देह में—सर में कड़ुवा तेल मालिश करके ही दम धरती। उसने पाँड़े को इतनी छूट तो दे ही दी है कि उस समय वह रह-रह कर उससे सट जाता था, कभी-कभी कमर में हाथ डालकर नितम्बों को छू देता। दोनों कुछ बोलते नहीं—सिर्फ अनायासे ही ऐसा करते रहते। चूल्हे पर दाल चढ़ी है। भात और सब्जी बन कर तैयार है। दाल की महक सब जगह व्याप्त है।

खट-खट-खट।

चुप ! चुप !!

खट-खट-खट।

'यह सरवा कौन है ?'—पाँड़े उसके कान में फुसफुसाया।

'पाव लागो पाँड़ेजी—पाव लागी। लकड़ी लाया हूँ। किल्ली खोलें।'

'लो, यह साला जानकर इसी समय पहुँचता है ! और कोई समय इसके पास नहीं है !'

'अरे, महाराज ! दरवाजा खोलें—सर फटा जा रहा है ।'

'उफ' कहकर पाँड़े धोती ठीक से बाँधने लगा और वह झट खड़ी हो चौके की तरफ बढ़ी ।

'ठहरो, आता हूँ। अभी तो लकड़ी थी ही—खैर·····'—पाँड़े ने न चाहकर भी किल्ली खोल दी।

अन्दर दरवाजे की चौखट पर ही वह लकड़ी का बोझा पटक कर सर दबाने लगा।—'उफ, बुढ़ापे की उम्र—अब बोझ सहा नहीं जाता।'

'आओ-आओ, कहो—कैसे हो ?'

'कट रहे हैं दिन ।'

दोनों दालान में बैठ जाते हैं।

'तुम बराबर ऐसे ही बोलते रहते हो—अब दोनों पोते तो खूब रिक्शे से कमा रहे हैं—अब झखनी कैसी ?'

'यह तो आप ही की 'किरिपा' से हुआ—आप ही की 'किरिपा' से दो जून मजे में हम खा लेते हैं। मगर क्या करूँ, अब बाबूगंज के बाबुओं को तिनपहिया फटफटिया चलने लगी है। कहाँ पैर की सवारी, कहाँ 'पेटरोल' की सवारी—जिगना-बलचनवा बेचारे भोर से लेकर रात तक पैर नचाते रहते हैं; मगर फिर भी अब तिनपहिया के सामने पार नहीं पाते—एक बार पाँच सवारी और घंटे में दस कोस चले जाते हैं। इसीलिए अब काम मन्दा पड़ गया—किसी तरह साहुजी को देकर कुछ बच जाता है। सुना है, परानपुर के बनियाँ भी तिनपहियवा लाने जा रहे हैं। तब तो और आफत आ जाएगी। क्या करूँ बाबा! गरीब का बराबर वही हाल रहेगा। कोई रास्ते चैन नहीं।'

डोमन अब फिर कुछ उदास दीखने लगा है। रिक्शा के कारण जो उमंग आई थी वह तिनपहियवा के आने के बाद खत्म हो गई। मंगर पाँड़े चाहता रहा कि जल्द इससे पिंड छूटे ताकि वह अपनी दुनिया में फिर लौट आए मगर आज डोमन बात करने के 'मूड' में था। फिर कहना शुरू किया—'पाँड़ेजी, आजकल तो 'ओट' की ही सब जगह चरचा है। इधर से हमारे पाठकजी, उधर से बाबू साहब। आज सुन रहे हैं, गोधन साहजी के यहाँ सब जुटे रहे और सूरज सिंह भी खड़े हो गए।'

'अच्छा ! यह तो आज ही नई बात सुन रहा हूँ।'

'हाँ, सूरज सिंह के गोल के सब लोग अभी टोला पर गए हैं—गाजी दुसाध के यहाँ।'

'तो क्या गजियां पलट जाएगा क्या ?'

'गजिया अभी छोकड़ा है, साथ ही कुछ पढ़-लिख गया है और नबी मियाँ की पार्टी का 'मेमर' हो गया है। हमलोगों की पार्टी का नहीं है—सायत उनलोगों के साथ हो जाए।'

'तब ?'

'तब क्या ? दो-चार ओट फुटकेगा, मगर उससे पाठक का ओट नहीं गड़बड़ाएगा।'

'हाँ भई, यही देखना है।'

'आपकी 'बराहमन' टोली तो ठीक है न ?'

'हाँ, बाबाजी लोग कहाँ जाएँगे ! उनका ओट पूरा मिलेगा—दो-चार ओट तो इधर-उधर होता ही है। हाँ, रामपूजन तिवारी का जजमनिका बाबूगंज में है, इसलिए उनके परिवार का ओट हमें नहीं मिलेगा।....सूरज

सिंह के खड़ा होने से तुम तो बड़ा झमेला में पड़े। गोधन जिगना-बलचनवा को पकड़ेगा।'

'ऊ दोनों का ओट उधर चला जाय, मेरा भी सायत चला जाय मगर पूरा हरिजन महाल पाठक बाबा के ही साथ रहेगा।'

मंगर पाँड़े खुश हो गए। जाति की तरफ पल्ला झुकना शुरू हो गया है। ब्राह्मण का वोट ब्राह्मण को, राजपूत का राजपूत को और सारा हरिजन महाल एक साथ।

डोमन बहुत देर तक पाँड़ेजी को सताता रहा। बीच-बीच में किवाड़ की ओट से पानकुँवर कई बार पुकार गई कि खाना ठंडा रहा है—खाना परोस दिया है—खाना बेस्वाद हो गया। 'ओट' का भूत जब उसके सर से उतरा तो वह जाने को तैयार हुआ। बस, झट पाँड़े ने उसे आशीर्वाद देकर चलता किया और किल्ली ठोंक दी।

'पानकुँवर—ओ पानकुँवर—कुछ न पूछो, यह ग्रामपंचायत का वोट क्या आया हुआ है, जान आफत में पड़ गई है। जहाँ किसी से मिलो, वही घेर कर बातें करने लगता है और जल्दी छोड़ता ही नहीं। आफिस में भी कुछ काम होता है थोड़े। बस, एक किस्सा अभी सुनो, दूसरे शाम दूसरा किस्सा सुनो। सारा गाँव कट मरेगा—देखना, कितने खून हो जाएँगे, कितने घर बरबाद हो जाएँगे। एक राजा का राज ठीक था, अब तो जितने चावल उतनी हाँड़ी।'

'तुम्हारे सर पर भी तो वही भूत सवार है। एक भूत गया तो दूसरा भूत बोलने लगा। चलो—पहले खाना खा लो।'

पाँड़े पीढ़ा पर बैठ जाता है। पानकुँवर गर्म-गर्म खाना उसे खिलाए

जा रही है। पाँड़े खाना सराह-सराह कर खाए जा रहा है—'वाह ! आज खाना खूब उतरा है—'राग रसोइया पागड़ी कभी-कभी बन जाय !' दाल में खटाई और अदौरी जो पड़ी है वह उसे बड़ी स्वादिष्ट बना रही है। और पुदीना की चटनी—ओह ! क्या कहने !'

'अब ज्यादा न सराहिए। हाथ ही बिगड़ जाएगा।'

'वाह ! मैं कोई झूठ थोड़े बोल रहा हूँ। जो सच है, वह कह रहा हूँ। और यह घी कहाँ से ले आई—इतना शुद्ध ?'

'बगल के लछुमन पाँड़े दे गए थे। शायद आपने उनका कोई काम कराया था।'

'ओ ! अब याद पड़ा। उसकी बेटी का गवना था। उसे चीनी की जरूरत थी। वही दिलवा दिया था।.... पाँड़े कब आया था ?'

'आज ही।'

'तुमने मुझसे कहा नहीं....'

'हाँ, मैं भूल ही गई। जब दाल की तारीफ हुई तो उसका घी मुझे याद आ गया।'

पाँड़े को खिला लेने के बाद पानकुँवर ने खाया। फिर दोनों कुछ देर तक गप्पें करते रहे।

पानकुँवर अब प्रसन्न है कि उसकी जिन्दगी एक रास्ते पर लग गई। पाँड़े भी सोचता है कि घर में आकर कोई रह तो गया। खाना समय पर मिल जाता है और घर भी लिप-पुत कर साफ रहता है; नहीं तो बिना गृहिणी के घर भूत का डेरा हो जाता।

पाँड़े तख्त पर लेटा है। पानकुँवर दूसरी कोठरी में पड़ी-पड़ी अपनी बीती हुई जिन्दगी याद करती है।

कि पाँड़े ने पुकारा—

'ओ पानकुँवर—पानकुँवर ! सो गई क्या ?'

'नहीं तो....'—वह झट दौड़ी चली आई।

'जरा पैर में तेल लगा दो। बड़ा दर्द है।'

'कहती हूँ कि इतना दौड़धूप न किया करें, मगर आप मानें तब तो ! पैर में तो बटखरा लगा रहता है।'

'क्या करूँ, भला अपने काम से दौड़ता हूँ ? सरकारी ताबेदार ठहरा, गुलामी करनी है, उसी लिए दौड़ता हूँ।'

वह तेल मालिश करने लगती है। पाँड़े को बड़ा सुख मिलने लगता है।

'पानकुँवर, तुम न रहती तो आज मैं कहीं का न रहता। बिना खूँटे का इधर-उधर मारा फिरता। तुम मेरे यहाँ क्या आ गई—मेरे घर में उजाला आ गया। तुम खुश हो न !'

'खुश....बहुत खुश।'

'तुम्हें सुखी देखकर मुझे कितना सुख मिलता है—तुम नहीं जानती।'

'नहीं, मैं सब जानती हूँ।'

पाँड़े का हाथ पानकुँवर की कमर में बड़े इतमीनान से चला गया।

है। वह हिलती-डुलती नहीं, न एतराज करती। फिर पाँड़े उससे सटने लगता है—वह वैसे ही तेल मालिश करती जाती हालाँकि हाथ में वह शक्ति नहीं रहती।

आज वर्षों बाद उसे पुरुष-शरीर की उष्मता—उसकी महक मिल रही है। पाँड़े को भी जमाने बाद एक नारी-शरीर का स्पर्श, उसकी गंध, उसकी स्वेद-बिन्दु से भरी मांसल पिंडुलियों की लीला देखने को मिली।

'उफ, अब क्या कर रहे हो—मुझे छोड़ो नहीं—दबाओ—खूब दबाओ····'

'बस, एक क्षण····।' वह झट कान में जनेऊ लपेट लेता है।

'अह, तुम भी, इसी समय····।'

दोनों पसीने से लथपथ हैं। तख्त पर पड़े-पड़े एक दूसरे के अंक में घिरे आँख मूँदे विश्राम कर रहे हैं।

डॉक्टर साहब के बरामदे में नरेन्द्र बैठा है। आज ऑफिस से झट निबटकर चला आया। काम कम था, मन थका था ; सोचा—डाक्टर से खुशगप्पियाँ लड़ाई जाएँ। मेज पर चाय और नमकीन रखी है। इन्तजार है कि डॉक्टर का बेटा रमेश आकर चाय बनाकर दोनों को दे दे।

'कुछ सुनाओ नरेन्द्र बाबू, इलाके की सरगर्मी !'

'इस इलाके की सरगर्मी कभी कम न होगी। बराबर एक-न-एक सिलसिला लगा ही रहता है। उधर बाबुओं और चमारों का तकरार था तो अब इधर बाबुओं और बाबाजी लोगों की खींचतान है । मुखिया का चुनाव क्या आया, गाँव में दरार फट गई। बाबूगंज और बसन्तपुर की ही यह हालत नहीं है, जहाँ-जहाँ हमारे अंचल में ग्रामपंचायत का चुनाव हो रहा है, सब जगह वही हालत है। क्या करोगे ? हमारी 'डेमोक्रेसी' अभी दूध-पीती बच्ची है। इसके ठुनुक अभी निराले हैं।'

'तुम तो बहुत घूमते रहते हो—तरह-तरह की खबरें रोज फैलती रहती हैं। आखिर तीनों प्रतिद्वन्द्वियों में किसका सुन्दर 'चांस' है ?'

'तुम बताओ—तुम्हारा क्या ख्याल है ? तुम भी तो घर-घर मरीज देखते चलते हो।'

'मैं तो समझता हूँ कि मजे की लड़ाई है !

'एकदम गलत ! पाठक साफ जीत रहा है

'सो कैसे ?'

'ब्राह्मण और बैकवर्ड का मिलन हो गया है ! अब पाठक का बहुमत है। उधर ठाकुरों के वोट में बँटवारा है। गोधन ने बड़ी भारी भूल कर दी कि सूरज सिंह को विरोधी दल से खड़ा कर दिया। वह भी ठाकुर और दलगंजन सिंह भी ठाकुर। दोनों एक दूसरे के वोट काट रहे हैं और इधर ब्राह्मण-वोट एकदम एक जगह है। कोई उनमें बाँट नहीं है। इतनी तगड़ी जातीयता है कि ब्राह्मण-वोट एक भी इधर-उधर न जाएगा।'

'मगर बनिया-वोट तो ज्यादातर दलगंजन सिंह को ही जाएगा क्योंकि अब आपकी जमींदारी जाने के बाद उनके माल के ज्यादा खरीदार या चोर-चुहाड़ों से उनके जान-माल के बचाने के सबसे बड़े ठेकेदार तो वे ठाकुर ही हैं।'

'नहीं, उसमें भी बँटवारा होगा। सोहन साहु और रामचन्द्र की पट्टी पाठक के साथ जाएगी, गोधन की पट्टी सूरज सिंह और दलगंजन सिंह में बँटेगी और बकिए बनियाँ छिटपुट—सब दलगंजन सिंह को ही वोट देंगे।····मगर इतने से क्या होता है—चमारटोली, दुसाधटोली, मुसहरटोली सब पाठक को मुसल्लम वोट देंगे। यह उसके लिए बहुत बड़ा 'गेन' है।'

'तो सूरज सिंह कुछ हरिजन वोट काट न सका ?'

'यही तो गोधन और रामभजन सिंह की गलत चाल हो गई है।

जिस मकसद से सूरज सिंह को खड़ा कराया गया वह मकसद पूरा न हुआ। वह हरिजनों का वोट न काट सका। वे मैदान में इतनी देर करके आए कि कुछ कर न सके और पाठक मैदान मार ले गया। जिस समय चमारों पर मार पड़ी थी, उस समय पाठक उनके आँसू पोंछने लगा, उनके लिए दौड़-धूप करने लगा। उस समय सभी पार्टियाँ कान में तेल डाले सोई पड़ी थीं, अब जब चुनाव का जमाना आया तो सभी जाग पड़े—मगर अब तो 'चिड़िया चुग गई खेत।'

'तब तो पाठक जीत रहा है—मगर है वह एकदम बोगस।'

'हाँ, एकदम 'फ्रॉड' है, मगर करोगे क्या, अब अच्छे लोग जल्द राजनीति में आते ही नहीं। बालिग मताधिकार से सभी डर गए हैं। 'मौबोक्रेसी' के चलते 'डेमोक्रेसी' छटपटा रही है।'

'हाँ, यह बात ठीक ही है।....जानते हो ?....आजकल सभी हमसे बहुत बिगड़े हैं। तुम मेरे यहाँ जो इतना बैठते हो—सभी समझते हैं कि मैं ही तुम्हारा प्रमुख सलाहकार हूँ और तमाशा यह है कि जितना उनकी निगाह में तुम गलत काम करते हो—वह सब मेरे ही इशारे पर। चार-चार बनियों को राशन की दूकान तुमने दी और शोर यह है कि बनियों में झगड़ा करा कर उनका वोट बँटवा देने की यह डाक्टर की साजिश है। ठाकुर समझते हैं कि बनियों का वोट उनके लिए मुसल्लम था, ऐसा कराकर मैंने बँटवा दिया और पाठक सोचते हैं कि यदि सिर्फ सोहन को दूकान मिली होती तो सोहन के नेतृत्व में सारे बनियों को वह जुटा देता। अब तो सब आपस में ही लड़ रहे हैं।'

'यह एकदम झूठी बात है। यह तो सरकारी नीति है कि कालाबाजारी रोकने और माल के ठीक से वितरण के लिए ज्यादा दूकानें खोली जायँ। अकेले एक से इतना बड़ा काम पार न लगेगा। इस अटकलबाजी का तो कोई जवाब नहीं।—फिर मेरे लिए कौन जगह है इस गाँव में जहाँ कुछ देर बैठकर कुछ बातें करूँ—अपना दिल खोल सकूँ! एक मिडिल स्कूल है यहाँ, जहाँ के शिक्षक चार बजते-बजते दूसरे दिहातों में बसे अपने घरों को चल देते हैं। फिर कहाँ जाऊँ, किधर जाऊँ! कोई भी ऐसा दालान नहीं जहाँ दो-चार ढंग के लोग बैठते हों या बातें करते हों। यही तो हमारे गाँवों का दुर्भाग्य है। जहाँ कोई पढ़-लिख लेता है—यहाँ से जीविका की खोज में शहर भाग जाता है। यहाँ उसे जी भी नहीं लगता। यहाँ के वातावरण के लिए वह अयोग्य हो जाता है।'

नाश्ता खत्म करके जब वे अस्पताल के अहाते में टहलने लगे तो देखा—सुग्गो अपनी गांधी टोपी पर तिरंगा बैज लगाए चला आ रहा है।

'क्या है सुग्गो! आज तो तुम पहिचान ही में नहीं आते। तुम्हारा भेष ही बदल गया है। वह फटी हुई गंजी, पैवन्दों से भरी धोती कहाँ गायब हो गई? आज यह नया कुरता, धोती, नई चकमक टोपी कहाँ से मार लाए?'

'डाक्टर बाबू, ओट का जमाना है। ऐसे सब लोग लाख सर पटकें मगर आजकल जब चंग पर चढ़ना है तो हमारे जैसे पुराने लुप्तप्राय कार्यकर्त्ता ही याद किए जाते हैं। सन् बोस से बयालीस तक बराबर हम जेल जाते रहे—गांधी बाबा के आर्डर पर, मगर अब तो सब नए-नए आ गए—रुपए वाले।'

'तब ?'

'तब क्या ? जब पाठक की नाव डोलने लगी, कामुनिस्ट—सोसलिस्ट—ठाकुर पार्टी दौड़ने लगी तो हमारी खोज हुई। मैंने कहा—महाराज ! जब से हिन्दुस्तान आजाद हुआ है, मैं भूखा हूँ—एक जून किसी तरह खा लेता हूँ, वह भी जब कोई दाता दे जाता है। घर में न जोरू, न जाँता। जवानी तो जेल में कट गई, अब बुढ़ापे में मुझसे ब्याह कौन करता ? राजनीतिक पीड़ित फंड से जो पैसे मिले भी, उन्हें बीच ही में सरकारी मुलाजिम या आप जैसे नेता हज्म कर गए। मगर कांग्रेस का मैं पुराना सेवक हूँ, जब तक जान है, उसी को होम करता जाऊँगा। पहिले आप मुझे खिला-पिलाकर इस हालत में लाइए कि चल-फिर सकूँ वरना मुझमें तो इतनी भी ताकत नहीं कि घर से बाहर जा सकूँ। इसी लुगड़ी पर सोता हूँ और यही कंकाल का कपड़ा पहनता हूँ। पाठक को अपना स्वार्थ है। तीन रुपये प्रतिदिन मुझे खोराकी देता है और ये कपड़े उसी ने बनवा दिए हैं। फिर देखिए, चोला अब रंग बदल रहा है।'—वह ठठा कर हँस पड़ा। सभी हँस पड़े।

'तो कोई दवा चाहिए क्या ?'

'नहीं-नहीं, यह वोट का परचा बाँटने आया हूँ। देखिए, अभी अस्पताल के पाये पर दो-चार चिपका देता हूँ। एक आप भी पढ़ें ! कुछ अन्दर जाकर मरीजों को भी बाँट देता हूँ।'

फिर मुरगी बड़ी तत्परता से अपना काम करने लगा। वे दोनों वहीं टहलते—बातें करते रहे।

आज नरेन्द्र कैजुअल लीभ पर है। तबीयत कुछ ठीक नहीं इसलिा सोचा कि घर पर ही पड़ा रहे। अकेले घर में रहना—जी नहीं लग रहए था। बिलट्टू को बुलाकर कहा—'बिलट्टू, बिना काम के मेरा जी नहीं लगता। आखिर कितना पढ़ूँ—अखबार, पत्रिका सब पढ़ गया।'

'इसीलिए कहता हूँ बाबू, कि शादी कर लें। अब तो आप कमाने लगे—फिर माताजी कोई सुन्दर बहू खोजकर आपकी शादी क्यों नहीं कर देतीं?'

'होगी शादी बिलट्टू, माँ बहू ढूँढ़ रही है—मगर वह तो बाद की बात है—यहाँ तो आज की बात हो रही है। डाक्टर तो दिन भर आज अस्पताल में चीर-फाड़ में लगा रहेगा।····हाँ, एक काम करो। बाबा का भी खाना यहीं बनाओ और पाँड़े चपरासी से कह दो कि बाबा को बुला लाए। गुलबकावली का किस्सा बाबा खूब सुनाते हैं।'

मुंशी टेनीलाल को तो कभी कोई काम नहीं। बुढ़ापे का आलम—शरीर थक गया है। बीते हुए कल की याद करें या आनेवाले कल में अपनी

मौत को तलाशें। गिरानी से तंगी ऐसी कि शहर से बेटे का मनीआर्डर समय पर न आए तो फाकाकशी की नौबत आ जाय। पाँड़े चपरासी ने जब नरेन्द्र का सन्देश सुनाया तो वह झट आने को तैयार हो गए।

'आइए-आइए बाबा ! कहिए, कैसी कट रही है ?'

'अरे, क्या कटेगी साहब ! बड़े आदमी की इज्जत धूल में मिला दी आपलोगों ने। यह ग्रामपंचायत का चुनाव क्या आया, छोटी जातों को आपने सर पर चढ़ा दिया।'

'आपने ही तो बहुत शोर मचा रखा था कि जल्द ग्रामपंचायत का चुनाव हो—गाँव में पानी बहने का कोई इंतजाम नहीं—हर गली में कीचड़—बुढ़ापे में यदि पैर फिसल जाय तो स्वयं सिधार जाऊँ।'

'हाँ, यह तो मैं कह ही रहा था मगर मैं क्या जानता था कि यह चुनाव नहीं, आफत का परकाला है ! कल बाबूगंज के बाबू दलगंजन सिंह आए थे—बड़ी हवेली वाले। कहा—चाचा, अब तो गाँव में आप ही पुरखे-पुराने बचे हैं—चलिए मेरे साथ, जरा चमटोली में चलकर 'ओट' ठीक करना है। मैंने कहा—छिया-छिया बाबू साहब, यह भी लगन में कोई लगन है ? जिसका मुँह न देखने का उसकी अब आप खुशामद करने चले आए। बाप-दादों की इज्जत बरबाद कर रहे हैं। जाइए-जाइए, हवेली में जाइए। वहीं बुलाकर इन्हें आर्डर दीजिए। तो उन्होंने कहा—चाचा, जैसा देस वैसा भेस। अब न वह ऊँची हवेली रही और न माथे पर हीरे की कलँगी। जब था तब था—अब तो ब्राह्मण भी शूद्रों के घर में जाकर

खाट पर बैठता है और उनसे बदन छुलाता है। मैंने कहा—तो जाइए, आप भी उसी पाँति में जाकर मिल जाइए। मगर मेरा धर्म—मेरा नेम न बिगाड़िए। मैं बाज आया इस चुनाव से। वह चलता बने। मैंने उनसे अपनी जान छुड़ाई। राम-राम ! भगवान ने मेरी इज्जत रख ली। हाय, वह भी क्या इज्जतदार जमाना था !....

भोर ही से सब दरबारी लोग बारहदरी में जुटे हैं। रावसाहब भी कभी टहलते हैं, कभी बैठते हैं—इतने परेशान वह कभी नहीं दिखे। कोई कुछ बोल नहीं रहा है। सब एकदम मौन हैं। सबकी नजर जनानखाने के दरवाजे पर टिकी है। कोई बाँदी आए और खुशखबरी सुना जाए। पंडित और मुल्ला पूजा-पाठ और दुआ-ताबीज का पूरा सिलसिला खड़ा किए हैं। बाहर फाटक पर भी भीड़ इकट्ठी होती जा रही है। शहर से कोई मेम डाक्टर आई है—यह खबर रातोरात गाँव में फैल गई और तभी अटकल-बाजी शुरू हुई—खैर, किसी तरह औलाद तो होने जा रही है। खुदा का शुक्र है।

दस बजते-बजते जनानखाने का दरवाजा खुला। सभी की उत्सुकता भरी आँखें उधर दौड़ गईं। मेम दौड़ी चली आई—'सन, रावसाहब, सन—छोकरा। इनाम-इनाम।'

रावसाहब खुशी से नाच उठे। झट गले से एक बेशकीमती हार उतार कर उसकी ओर फेंक दिया। वह निहाल-मालोमाल हो गई। दरबारी लोग मुबारकबादी देने को खड़े हो गए। पंडित और मुल्ला भगवान और खुदा

की पूजा-इबादत करने लगे। फाटक पर से भीड़ उमड़ कर अन्दर अहाते में चली आई और जयजयकार करने लगी।

फिर तो सारा गाँव जशन मनाने लगा। महाजनटोली और खाँ साहब के दरवाजे पर मानकी और बिट्टन का मोजरा होने लगा। छोटी जातों की टोली में लौंडा नाचने लगा और शाम होते-होते पँवरिया 'बधावा' गाने पहुँच गया। रावसाहब बाहर निकल आए। मुंशी टेनी लाल आज दिन भर दरबार में ही रहे। घर जाने की उन्हें इजाजत न मिली। दिन भर लोगों का ताँता बँधा था। उनको बैठाना, उनकी खातिर-बात करना—यह खाँ साहब और मुंशी टेनी लाल के जिम्मे रहा।

पँवरियों का नाच-गाना देखकर गाँव से एक दूसरी भीड़ उमड़ी चली आई तो रावसाहब ने पूछा—'टेनी, करीब आओ। चाँदी और सोने का जब बनकर आ गया है—इस भीड़ में लुटा दो।'

'हुजूर की जो मर्जी !'

'फिर ऐसा मौका कौन आएगा ?'

'बेहतर।'

खजाने से जव की थैली मँगाई गई और अन्दर से जब औंछ कर आई तो मुंशी टेनी लाल ने भीड़ में उसे लुटा दिया। कंगालों की भीड़ जयजयकार मनाती हुई टूट पड़ी। उसमें यह डोमन, फेंकुआ, घुरफेंकना आदि सभी थे। ये हरामजादे पिल्ले की तरह बरामदे में चढ़ आए। बस, टेनी लाल ने अपनी छड़ी से इनकी पीठ को लहूलुहान कर दिया और उधर दलगंजन सिंह के बाप बाबू बरियार सिंह ने तलवार निकाल ली। एक खूबसूरत और गुस्सावर जवान। बस, झट रावसाहब ने उनका हाथ पकड़ लिया—'इस

खुशी के मौके पर आप यह क्या कर रहे हैं ?' —'नहीं सरकार ! इनकी इतनी मजाल कि महल में घुस आएँ ! महल के अहाते में आ गए, यही बहुत हुआ—अब क्या ये हमारे सर पर चढ़ेंगे ? दूर खड़े हो अपना इनाम लें—जब ढूँढ़ें ।' फिर मामला सटर-पटर हुआ ।

उस रात की महफिल तो गजब की रही । बसन्तपुर के इतिहास में ऐसी महफिल कभी नहीं जमी । बनारस की नहीं, गाँव की ही मानकी और बिट्ठन को यारों ने दरबार में पेश कर दिया । रावसाहब ने उस दिन सारी छूट दे रखी थी । बस, उन्हें दरबार में गाने-नाचने की इजाजत मिल गई । उस दिन दरबारियों को पीने-खाने की तथा फिकरा कसने की छूट थी । सबों ने खूब पीया और जो न पीना चाहता रहा उसे नाक के सूराख से शराब की बूँदें डाली गईं । वे छींकते-भागते, लोग-बाग उन्हें पकड़ते, बेवकूफ बनाते । कुछ देर तक यही तमाशा रहा । फिर जब महफिल जमी तो एक-से-एक फिकरे कसे जाने लगे । रावसाहब बड़े गंभीर बने रहते मगर जब मुस्कुराते तो लोग कह बैठते—हुजूर, खता माफ हो ! आज सब खून माफ है । रावसाहब हँसकर रह जाते ।

छेदी लाल उस दिन बहुत ज्यादा पी गए थे । महफिल में फूहड़-पातर बकने लगे—हुजूर, जरा इधर भी मुखातिब हुआ जाए—इधर भी । ....रावसाहब उधर देखने लगे । सभी की नजर उधर मुड़ गई । मैं मानकी

को अपनी गोद में बिठाना चाहता हूँ, जैसे आप एक दिन अपने मुन्ना को गोद में बिठाएँगे""खता माफ हो सरकार !

इतना कहते-कहते उनकी जबान लड़खड़ाने लगी—सभी ठहाका मार हँसने लगे।

रावसाहब ने टेनी लाल के कानों में कहा—'टेनी, इन्हें बाहर ले जाकर लिटा दो नहीं तो सारा जाजिम गंदा कर देंगे। ये अब अपने आप में न रहे।'

फिर मानकी और बिट्ठन की युगलबन्दी हुई। एक कृष्ण बनती, दूसरी गोपी। वह बाँसुरी बजाने की अदा—उस पर रीझने की वह कला ! उफ-उफ, कुछ न पूछिए।

""""इसी तरह अपने आप में खोई हुई वह महफिल भोर में तारा डूबने तक जमी रही—गुलछर्रे उड़ाती रही। सचमुच गजब थी वह रात ! वह रात फिर न आएगी।

'फूलमती, लो यह सोने का कड़ा और यह सोने का हार। लाल कोठी चली जा और मेहर को दे दे—कहना, बच्चे के लिए मेरा आशीर्वाद है।'—राजरानी देवी इतना कहकर महल के झरोखे से दूर—बहुत दूर, निर्जन प्रान्तर को देखने लगीं। जान पड़ा, उनकी छाती की वेदना उस निर्जन प्रान्तर में क्षणभर को व्याप गई है।

'यह क्या कर रही हैं सरकार !'—फूलमती ने अचंभित होकर कहा।

'नहीं, वह भी तो हमारा ही खून है ! उसे हक है इन्हें पहिनने का। कह देना—मृत्यु के पहले रावसाहब की माँ ने मुझे ये गहने दिए थे—रावसाहब के बचपन की निशानी।'

'नहीं-नहीं, ऐसा न करें—एक दिन अपने लाल को मैं पिन्हाऊँगी।'—फूलमती ने एतराज किया।

'उसकी उमीद न करो फूलमती, जो हुआ सो हुआ।'

राजरानी देवी की आँखें भर आईं। उस जलाशय में उनकी आँखों की दो काली-काली पुतलियाँ डूब गईं और साथ-ही-साथ उनकी वेदना की वह चंचल धारा भी लुप्त हो गई। थोड़ी देर को घोर निस्तब्धता।

'मेरी बात मानो फूलमती, मैं सही कहती हूँ। जा, उसे मेरी ओर से पिन्हाना। मेरी आज्ञा न मानोगी ?'

फूलमती अपनी मालकिन की आज्ञा पालने के लिए महल से निकल पड़ी। चाल धीमी, मन भारी ; मगर चारा क्या—राजरानी देवी ने जिद जो पकड़ ली थी।

फूलमती जिस समय लाल कोठी पहुँची—चन्द महीने बाद भी अभी वहाँ रस-रंग का ही दौरदौरा था। वही जशन, वही कहकहे ! बारहदरी में दरबारियों का हुजूम, तवायफों से मजाक के सिलसिले। उसकी पहुँच की खबर झट हर कोने में फैल गई। सभी परीशान हैं कि अपने आँचल-तले समेट कर राजरानी देवी की दूती क्या तोहफा लाई है। जबसे मेहर आई है, यह पहला अवसर है, जब महल से कोई बाँदी लाल कोठी में आई है। फिर झट रावसाहब अन्दर बुलाए गए। मेहर सजधज कर मसनद के सहारे दीवान पर बैठी है। रावसाहब वहीं बगल में बैठ जाते हैं। छोटा मुन्ना अपनी माँ की गोद में किलकारियाँ भर रहा है। मेहर के जिस्म में माँ होने के बाद से नया खून दौड़ गया है। अपनी धानी आबेरवाँ की साड़ी में आज और भी खूबसूरत दीख रही है।

'क्या है मेहर ?'—रावसाहब ने बड़े प्यार से पूछा।

'आपने पहिचाना इन्हें ? यह सोने का हार और ये कड़े····मुन्ना पहिने है।'

'नहीं तो।'

'ये आपके ही हैं—बचपन के। राजरानी देवी ने भेजे हैं।'

वह हँस पड़ी। रावसाहब झेंप गए। साथ-साथ मुग्ध भी हो गए।

'राजरानी देवी की शराफत के क्या कहने !—है बड़ी नेक औरत।' —मेहर ने गंभीर होकर कहा।

'इसमें क्या शक !'—रावसाहब ने दाद दी।

फूलमती वहीं घूँघट काढ़े खड़ी थी। अपने बटुए से एक सोने और मोती का हार निकाल कर उसे देते हुए मेहर ने कहा—'फूलमती, ले यह अपना इनाम। मेरा सलाम कहना अपनी मालकिन को....और हाँ, यह भी कहना—यह लाड़ला उनका भी लाड़ला होगा—इसमें तनिक भी संकोच न करेंगी। समझी....?'

फूलमती चल देती है। उसे यह सब कुछ भी अच्छा न लगा। आखिर मालकिन ने ऐसा क्यों किया ?—यही बात उसे सदा सताती रही।

मेहर की छाती में एक ऐसा हृदय बसता है जहाँ द्वेष की नहीं, प्रेम की अविरल धारा बहती रहती है। उसकी गोद क्या भरी—उसे जीवन का सारा सुख, सारा संतोष मिल गया। वह निहाल हो उठी और अपने बच्चे के, अपने मालिक के आजीवन सुख की दुआ अल्लाह से करती रहती····।

रात गहरी होती जा रही है। दरबारी अपने-अपने घरों को चल दिए हैं। रावसाहब जनानखाने में दाखिल हो गए हैं। जाड़े की रात—अँगीठी जल रही है। रावसाहब और मेहर दीवान पर बैठे जलती आग की लौ को देख रहे हैं। मुन्ना मखमल की रजाई ओढ़े वहीं सो रहा है।

मेहर ने स्तब्धता को भंग करते हुए कहा—'मेरे राजा! मेरे दिल में एक कसक—जज्बात की एक लहर-सी उठ रही है····।'

'क्यों—क्या बात है? क्या मैं तुम्हारे जज्बात समझ सकता हूँ—?' —रावसाहब ने परीशानी जाहिर की।

'नहीं-नहीं, जाने भी दीजिए।'—मेहर ने बात बदलनी चाही।

'देखो, कतराओ नहीं—मैं तुम्हारे लिए सब कुछ त्याग करने को तैयार हूँ।'

मेहर ने उनकी हथेली को अपनी नरम-नरम उँगलियों में छिपाते हुए झट कहा—'इसी का तो मुझे फख्र है मेरे मालिक ! मैं तो निहाल हो उठी हूँ आपके प्रेम से।....बहुत दिन हो गए, आप राजरानी देवी के यहाँ नहीं गए। सोचती हूँ, मैं उनके प्रेम—उनके जज्बात के बीच कहीं दीवार बनकर तो नहीं खड़ी हो गई हूँ ! क्या आज रात आप उनसे मिल आएँगे ? ओह ! सचमुच वह कितना खुश होंगी !'

रावसाहब चुप हैं। वह आवाज देती है—'गुलाबन ! मुंशी टेनी लाल को बुलाओ।'

'वह अभी कहाँ मिलेगा ? कब का घर गया।'—रावसाहब ने झट कहा।

'नहीं, मैंने उन्हें रोक रखा था।'—अब उसकी आवाज में एक दृढ़ता आ गई है।

'ओ ! तुम दोनों का षड्यंत्र शाम से ही रचा गया था !....खैर, गाड़ी मँगाओ।'

मुंशी टेनी लाल पहले से ही गाड़ी कसवाए तैयार हैं। रावसाहब ने मुस्कुराते हुए दुलाई ओढ़ी, फर की टोपी पहनी और छड़ी लेकर बाहर निकल आए।

'चलिए लाला ! रास्ता दिखाइए। यह पेशा आपने अच्छा अख्तियार कर लिया है। एक दिन पोल खुलेगी तब न आपकी पिटाई होगी !'—
—रावसाहब मजाक के मूड में थे। कोचवान ने घोड़े की पीठ पर चाबुक

मारा और वे हिरन हो गए और बात-की-बात में महल के हाते में दाखिल हो गए।

''''फिर वही जूते उतार कर डरते-डरते महल में दाखिल होना, कंधा पकड़कर कोठे की सीढ़ी पर उस अँधेरी रात में चढ़ना, नींद में बदहवास सोई हुई बाँदियों की कतार को लाँघ कर राजरानी देवी के बरामदे होते उनके कमरे में पहुँचना—फिर टेनी लाल का उस सारी प्रक्रिया को दुहरा कर महल से बाहर निकल जाना, राव साहब का राजरानी देवी को जगाना और चिल्लाने के पहले उसका मुँह बन्द कर देना—ये सभी क्रिया-कलाप बड़ी खूबी के साथ सम्पन्न हुए।

'अरे, आप ! माफ करेंगे''''' वह झट उठ गई। फूलमती बेखबर बगल में सो रही है। उसकी साड़ी जाँघ तक चढ़ आई है। वह भी धड़फड़ा कर उठती आह-ऊह करती साड़ी ठीक करती और दूसरे घर में भाग जाती। राजरानी देवी अन्दर से दरवाजा बन्द कर लेतीं।''''

'आज इतने दिनों बाद रास्ता कैसे भूल पड़े ?'

'वाह ! इतने दिनों कहाँ—हाल ही तो आया था !'

'मेरे लिए वही एक युग बन गया है। जाने कितना समय गुजर गया—कुछ भी अब याद नहीं।'

उसकी आँखों में आँसू भर आए। दीये की लौ में उन दो भींगी आँखों को रावसाहब शायद नहीं देख सके। उसने गले से किसी तरह आवाज निकालते हुए फिर कहा—'बेटा मुबारक !'

'और तुम्हारे लिए ?'

'मेरे लिए भी मुबारक !

रावसाहब ने उसे अंक में भर लिया। राजरानी देवी भी निहाल हो उठीं। युग-युग की उनकी साधना फलीभूत हुई। तपस्विनी के भी दिन फिर आए। राम के पद-स्पर्श से अहिल्या जाग पड़ी। जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। उस गहन निस्तब्ध रात्रि में बसन्तपुर ने अपने इतिहास में नए पन्ने जोड़ दिए।

'बाबा ! वे भी क्या दिन थे ! प्रेम और द्वेष दामन-चोली की तरह सजते-सँवरते रहे । आज की तरह फन खड़ा कर फुफकार नहीं पड़ते थे ।'

'ओह ! इसमें क्या शक ! एक दूसरे की कमियाँ वह युग खूब समझ लेता था । मगर आज ! कुछ न पूछिये !'

यह गुफ्तगू खाने की मेज पर हो रही है कि पाँड़े आकर खड़ा हो गया ।

'क्यों, क्या बात है ?'

'हुजूर, खाद का ट्रक पहुँच गया है ।'

'खाद का ?.....'

'जी, हाँ....।'

'कितने ट्रक हैं ?'

'दो ।'

'लो, यह नई आफ़त ! छुट्टी में भी जान नहीं बचती ।....रामजतन बाबू हैं ?'

'जी, ट्रक में ही बैठे हैं ।'

'ऊपर बुला लाओ।'

नरेन्द्र झटपट खीर खाकर उठ जाता है और हाथ-मुँह धोकर पान की एक गिलौरी मुँह में रख लेता है।

'सलाम हुजूर!'

'सलाम! यह नया झमेला कहाँ से खड़ा हो गया। आज ही....'

'पता यह चलता है कि शहर में विदेशी खाद के बैगन जरूरत से ज्यादा आ गए हैं, इसलिए ए० डी० एम० साहब ने हर ब्लॉक का एलौटमेंट समय से पहले ही भेज दिया। अब तो माल रख ही लेना है। मैं घर खाना खाने गया था। ट्रकवाले हमारे घर पर ही पहुँच कर शोर करने लगे। क्या करूँ, खाना छोड़कर भागा-भागा चला आया।'

'मगर गोदाम तैयार होने में तो अभी १५ दिनों की देर है।'

'एक रास्ता निकल सकता है—अभी गढ़ में ही कहीं रखवा लिया जाय, फिर गोदाम तैयार होते ही माल हटा लिया जाएगा।'

'वाह! आप भी कैसी बातें कर रहे हैं? खाद रखने से सारी दीवाल नोनिया जाएगी और यह इमारत बरबाद हो जाएगी।'—टेनी लाल ने आपत्ति की।

'मगर बाबा! अब करना क्या है! इस गाँव में दो ट्रक खाद रखने को दूसरी कौन जगह ढूँढ़ी जाय।....चलिए, आँगन में चलिए। तीनदर्रा खुलवा देता हूँ—वहीं तब तक माल रखवाइए। फिर गोदाम बनते ही उसे हटवा लेंगे।'—नरेन्द्र ने कहा।

'रामजतन बाबू ने संतोष की साँस ली। नरेन्द्र मुंशी टेनी लाल को लेकर नीचे उतरा और ड्योढ़ी-दर-ड्योढ़ी पार करता अन्दर आँगन में पहुँच

कर तीनदर्रा खुलवाया। बरसों से बन्द कमरे, सीलभरी महँक। दरवाजा खुलते ही चमगादड़ भागदौड़ मचाने लगे। उनकी विष्ठा से दीवारें रँग गई थीं। बिलट्टू ने वहीं ऑफिस से लाकर दो कुर्सियाँ रख दीं।

नरेन्द्र बैठ गया तो टेनी लाल ने अपनी छड़ी उठाई और बाहर जाने लगे।

'ऐं-ऐं! बाबा, यहीं बैठिए। अब बोरों को यहाँ बन्द करवा ही कर ऊपर चलेंगे। एक नई जवाबदेही जो सर पर आ गई है।'

'हाँ, ठीक है, मगर बाहर आँगन में चलकर इतमीनान से खुली हवा में बैठिए—यहाँ हमारा दम घुटा जा रहा है।'

'हाँ, ठीक, बाहर आँगन में चलें, कहीं एक कोने में साये में बैठें—सभी बोरों को गिनवाने और रखवाने में समय लग जाएगा। और हाँ, बिलट्टू, बड़ा बाबू से कह आओ कि जमीन में लकड़ी की पटिया पहले बिछवा दें, नहीं तो गच के सीलन से माल बहुत खराब हो जाएगा। किसी बढ़ई के यहाँ से आम की पटिया मँगा लें।'

दोनों बाहर बैठ जाते हैं। मगर बाबा अभी भी परीशान दीखते हैं। नरेन्द्र पूछ बैठता है—'क्यों बाबा! तबीयत तो ठीक है न! गोश्त कुछ ज्यादा चढ़ा गए हैं क्या?'

'नहीं तो, यों ही....।'

'नहीं, जरूर कोई बात है। छिपाइए नहीं।'

'नहीं।'

'उस रात के बाद आज पहली बार इस जगह पर मैं फिर आया हूँ। ओह ! जमाना बीत गया—शायद पूरे साठ साल। कितने युग भूत में विलीन हो गए।'

····यही तीनदर्रा राजमणि देवी का शयनकक्ष था। खूब सजा हुआ—भड़कीला। फर्श पर कीमती कालीन, गंगाजमनी पाये का मखमली गद्दादार पलंग—उस पर सुनहरे शीशे तथा लकड़ी के जालीदार काम। दो-चार मखमल की मचिया, सिरहाने चाँदी का पानदान, उगलदान। गुलाबी खुशनुमा कमरा और छत से लटकते मोमबत्ती जलाने के शीशे के झाड़-फानूस। एक शीशे का फानूस उस कोने में अभी लटक भी रहा है।

········बकौल रावसाहब के आज मुंशी टेनी लाल की पिटाई हो रही है। राजमणि देवी ने भोरे-भोरे उन्हें बुला भेजा है। आखिर आज कौन-सी आफ़त आ गई ! कहाँ से गाज गिरी ! वह बिना नहाए-धुआए पहुँचे। बाँदी से अन्दर खबर भिजवाई। उनकी झट तलबी हुई। राजमणि देवी गुस्से में बुत थीं। बाल खुले, सर से आँचल गिरा हुआ, ललाट का सिन्दूर अस्त-व्यस्त—बिलकुल रणचंडी सदृश दीख रही हैं।

उन्हें देखते ही बरस पड़ीं—'क्यों जी टेनी ! यह मैं आज क्या सुन रही हूँ ?'

'क्या ?'

'क्या ? क्या ?? वाह रे क्या ? जैसे तुम्हें कुछ मालूम ही नहीं—बड़े निर्दोष बनते हो। दो बजे रात में फूलमती ने मुझे जगाकर कहा कि राजरानी के पेट में बड़ी पीड़ा हो रही है—कुछ उपाय करें। तो मैंने कहा—ले यह चूरन, गरम पानी में पिला दे ; बहुत खाती रहती है—अपच

हो गया होगा—गदही ऐसा तो खाती रहती है। वह चूरन लेकर चुप खड़ी रही। मैंने कहा—जा-जा, जा-जा ! मेरी नींद हराम न कर। मगर वह टस-से-मस न हुई। मैंने आँखें बन्द कर लीं; फिर खोला तो उसे वहीं पाया। मैंने डाँट बताई—अरी बेहूदी ! जा, तू अपनी मालकिन के साथ मर जा। इतनी रात गए मेरी जान क्यों खा रही है ? मैं कोई डाक्टर-वैद्य थोड़े हूँ। तो उसने कहा—ऐसा दर्द नहीं, कुछ दूसरा दर्द है। मैंने कहा—पागल न बन—जा, सो रह।········तो उसने सारी बात बता दी। मेरे तो काटो तो खून नहीं—मैंने दो लात उसकी छाती पर जमा दी—वह बेहोश हो वहीं गिर गई। जब होश में आई तो मैंने उससे कहा—जा, राजरानी को ऊपर छत से नीचे ढकेल दे—कुलक्षणी गिर कर दम तोड़ दे। तो उसने और भी बड़ी सारी सच्ची बातें बताईं। मैं तो खून का घूँट पीकर रह गई। आज जान गई कि काला कायस्थ कितना दगाबाज होता है। इस सारे षड्यंत्र की जड़ में तू है—तू—मक्कार—पाजी ! तूने हमारे घर में आग लगा दी—मेरा सपना तोड़ दिया। ····और हाँ, अभी-अभी उस बदनसीब रंडी से कह आ कि देवकी की कोख से आठवाँ पुत्र जनम रहा है। बड़ी नेम निभाने चली थी—अब घर से भी निकलना होगा। हरामजादी ! बड़ी सतवंती बनती रही। चुड़ैल। अपना बुरा-भला जो नहीं जानती—रंडी-पतुरिया ! मैं भी तुझे देख लूँगी सूअर के बच्चे ! अभी मेरे गढ़ से निकल जा। यदि फिर इसके हाते में कदम रखा—रात-बिरात—कभी भी—तो तुझे कुत्तों से नोचवा दूँगी। वह पागल हो गई थी—मसहरी का मोटा डंडा निकाल कर क्रोध से उसके मुँह पर फेंका। टेनी के भरपूर जवानी के दिन थे, वह झट कज हो

गया—डंडा दूर गिरा और वह नौ दो ग्यारह। बाहर रावसाहब चबूतरे पर बैठे हैं—अन्दर मेम पहुँच गई है। चबूतरे के नीचे बन्दूकची और रियासत के दो-चार ऊँचे कर्मचारी भी खड़े हैं। उनके सामने अब किसकी मजाल कि कोई चीं-चपड़ करे! जो हुआ सो हुआ—अब तो नया अध्याय शुरू होने जा रहा है। उन्हें देखते ही रावसाहब ने पुकारा—'टेनी! कहाँ भागे जा रहे हो?'

'हुजूर, कुत्तों के डर से महल के अहाते के बाहर जा रहा हूँ।'

'अबे बेवकूफ! इधर आ!'

उनका प्रेम ऐसा था कि इतनी गाली सुनने के बाद भी टेनी भाग न सका—उनके पास चला आया। रावसाहब उसे पास बुला कान में फुसफुसाने लगे—'क्या बताऊँ—तीन बजे रात को फूलमती दौड़ती हाँफती मेरे कमरे में घुस गई—रास्ते में उसने किसी की भी एक न सुनी। मैं तो चिल्ला कर उठ बैठा—सारी खबर सुनी। मेहर ने उसी समय गाड़ी पास ही खुली पादरियों के अस्पताल में भेज दी—समय पर मेम भी आ गई। मैं तो उसी रात पैदल ही दौड़ा चला आया। पीछे-पीछे सभी हाली-मुहाली दौड़ने लगे। राजरानी दर्द से तड़प रही थी। मुझे देखते ही उसे जान में जान आ गई। जैसे उसे सब कुछ मिल गया। अब देखो.........' —इतनी बात रावसाहब एक साँस में टेनी को एक कोने में ले जाकर कह गए।

'सब कल्याण होगा—घबड़ाएँ नहीं, अभी मैं दिशा-फराकत भी नहीं हुआ हूँ—अभी घंटे-आध घंटे में हाजिर होता हूँ।'

गढ़ के अहाते के बाहर जाते-जाते मुंशी टेनी लाल ने बन्दूक की

आवाज सुनी और वह समझ गए कि राजरानी को पुत्र-रत्न प्राप्त हो गया। एक ड्रामा समाप्त हुआ।

नए शिशु के जन्म की खबर गाँव में तथा जवार में बिजली की तरह फैल गई। लोगबाग गढ़ के अहाते में हजारों-हजार की संख्या में घुस आए। कोई गा रहा है, कोई यों ही धमाचौकड़ी मचाए हुए है। लाल कोठी वीरान है। राजमणि देवो का कक्ष सुनसान है। मगर गढ़ के अहाते में जनता अपने तौर पर जशन मना रही है। रावसाहब भी प्रसन्न हैं— अति प्रसन्न!

आज भोर होने के पहले ही बसन्तपुर जाग पड़ा। सदियों से सामन्त-शाही और नौकरशाही यंत्र में पिसी हुई जनता आज पहलेपहल अपना हक पहचानने जा रही है। चमारटोली, दुसाधटोली, मुसहरटोली, ब्राह्मणटोली, बनिया महाल, बड़का पोखरा, छोटका पोखरा, मटहवा टोल—सभी जगह सरगर्मी है। अपने-अपने 'ओटियरों' को घर झाड़कर निकाल देने की तैयारी है। मजदूरों की राय है कि झट वोट देकर काम पर चल दिया जाय। ब्राह्मण-बनिया महाल चाहता है कि स्नान-पूजा-भजन-भोजन से फुर्सत पाकर ही इतमीनान से वोट देने चला जाय। आज बाहरी प्रचार बन्द है—सिर्फ काना-कानी, मुँहामुँही प्रचार चल रहा है।

आठ बजे के पहले ही बी० डी० ओ० बूथ पर आकर बैलट पेपर, स्याही, वोटरलिस्ट वगैरह ठीक-ठाक करने लगा। उधर बाहर कतार लग गई है। आठ बजे बूथ का दरवाजा खुला तो देखा—पहली ही पाँती में टेनी बाबा, डोमन, घुरफेंकन, वीरमणि पाठक, दलगंजन सिंह सभी खड़े हैं। बाबा को देखकर वह अचंभित हुआ। कल तक जो इस वोट से भिन्ना रहा था, वही आज पहली कतार में खड़ा है।

'उम्मीदवार तो कभी भी आकर वोट दे सकते हैं—आपलोगों को तो अन्दर आने में मनाही नहीं हैं—फिर अभी से........'

'हमलोगों ने सोचा कि नियम सबके लिए एक ही हो—पहले ही निबट लें ताकि काम करने में आसानी हो।'—उम्मीदवारों ने बारी-बारी से कहा।

'और बाबा!—आप....?'

'जमाने के हाथों से चारा नहीं है,
जमाना हमारा-तुम्हारा नहीं है।'

—बाबा खड़े-खड़े यह शेर पढ़ गए।

बी० डी० ओ० साहब हँस पड़े—साथ-ही-साथ उनका स्टाफ और आगे-पीछे खड़े लोग भी। नरेन्द्र ने सोचा—समय सचमुच बदल गया है।

पहले तो जरा 'डल' वोटिंग चला मगर दस बजते-बजते तो एक महती भीड़ उमड़ी चली आई। बाबूगंज से बबुआनों की औरतें बन्द बैलगाड़ी में चली आईं, ब्राह्मणटोली तथा बनिया-महाल से भी रंग-बिरंगे कपड़े पहने और घूँघट काढ़े औरतें जुट गईं। मर्दों से औरतों की कतार ज्यादा हावी हो गई तो नरेन्द्र ने बड़ा बाबू को बुलाकर कहा—'आप झट जीप लेकर थाने में चले जाइए और कुछ 'फोर्स' लाइए। जितना फोर्स अभी है उतने से काम न चलेगा और दारोगाजी से कहिए कि झट चले आएँ।'

'हुजूर, मैं तो पहले ही कह रहा था कि ब्राह्मण-राजपूत का झगड़ा बड़ा बेढब हो गया है और बीच में दाल-भात में ठेहुन सदृश ये चमार-दुसाध खड़े हो गए हैं, इसलिए फोर्स पूरा मँगाकर रखा जाय—।'

'हाँ, मगर इतने जोश-खरोश से वोटर चले आएँगे—इसका अनुमान मैं न लगा सका था। खैर, कोई बात नहीं, अभी तक सभी बड़े 'पीसफुल' हैं—केवल सतर्क रहना है।'

देखिए ! रिटर्निंग अफसर साहब ! हमारी उजुरदारी ले लीजिए—गोधन साह अपना वोट बलचनवा और जिगना के रिक्शों पर ढो रहे हैं।'

''''नहीं, हरगिज नहीं, सब ओटियर अपने पैसे देकर रिक्शा पर आ रहे हैं—नहीं हुजूर, यह सरासर झूठ है !

खैर, जो हो—अपनी अर्जी दे दें—'एलेक्शन पिटीशन' जब पड़ेगा तो केस देखा जाएगा।

हुजूर, यह भी अर्जी लीजिए—बोगस वोट पास हो गया—हरिजन महाल का बोगस वोट—परानपुर के नट पैसे लेकर चमारों के नाम पर वोट दे गए !''''

बाहर-भीतर सरगर्मी। पं० वीरमणि पाठक कड़कते हुए पहुँचते हैं—रिटर्निंग अफसर साहब ! गजब हो गया ! मेरा एजेंट चोर निकला—दलगंजन सिंह से पैसे लेकर बोगस वोट पास करा दिया। मैं उसे बरखास्त करता हूँ और दूसरा एजेंट बहाल करता हूँ। मेरी भी अर्जी रख लें—एलेक्शन पिटीशन पर लड़ा जाएगा।

अरे सार ! रिक्शा पर वोट ढो रहा है ? सुखिया और उसकी दादी को यदि रिक्शा पर चढ़ाया तो सर फोड़ दूँगा और दोनों रिक्शा भी तोड़ दूँगा।········मालिक, ई लुंज कइसे जाई········इसके जाने की कोई जरूरत नहीं—इन दोनों का वोट गिर चुका—····हाय-हाय, हमारा दो ओट गड़बड़ा गया। हाय-हाय, आग लागे ओट में रे—कहत रहीं कि साथे लिया ले चल—कह गइले कि पोतन के गाड़ी पर चल अइहे—ले अब मजा मार—बुढ़िया छाती पीट-पीट कर रोने लगी—जैसे उसका सर्वस्व लुट गया।····ना, ना—हम जरूर जाईब। ले चल बलचनवा, अरे, ओ जिगना—उठाव नाव छाप—नाव छाप····बाबा का—फाटक बाबा का।

'ई बुढ़िया मरी—' किसुना और बन्दूकी ने दो-दो लट्ठ दोनों रिक्शा के पहियों पर मारा और उसके सारे रीम और स्पोक टेढ़े होकर टूट गए। फिर बबुआनों के लठधर चमारटोली और मुसहरटोली में लाठी भाँजते चिल्लाने लगे—एक वोट पास न होने देंगे—देखते हैं, किसकी मजाल है कि अपने घर से निकल जाय ! मार डंट से यहीं ढेर कर देंगे। बूथ पर शोर मचा कि बबुआन हरिजन वोट निकलने नहीं दे रहे हैं। हर कोने पर नाकेबन्दी हो गई है। किसुना और बन्दूकी ताल ठोंक रहे हैं।

वीरमणि पाठक और सूरज सिंह ने एक खासी भीड़ लिये रिटर्निंग ऑफिसर को घेर लिया—'साहब, बलवा होने जा रहा है—बलवा—खूनखराबी होगी। अभी फोर्स लेकर चलिए और हरिजनों को निकलवाइए वरना आज बाबूगंज लुटा जाएगा।'—पाठकजी ने कहा। 'आज वोट रोक दीजिए—इस तरह वोट नहीं पड़ सकता।'—सूरज सिंह

ने शोर मचाया। 'हरगिज नहीं—मैं जीत रहा हूँ—वोट बन्द न होगा।'—वीरमणि पाठक ने आपत्ति की। 'नहीं-नहीं, पोलिंग नहीं बन्द होगा—चलिए, मैं फोर्स के साथ चलता हूँ—देखें कौन किसको रोकता है। यह जनतंत्र है। सबका हक बराबर, माँग बराबर।.....'

फोर्स हरिजन महाल में पहुँचता है। बन्दूक देखकर भागदौड़ मच जाती है। एक बन्दूकची ने आसमानी फायर कर दिया। फिर तो भीड़ ऐसी तितर-बितर हुई कि जैसे कुछ वहाँ हुआ ही न हो। सभी हरिजन—खासकर स्त्रियाँ बहुत डर गई हैं। कोई घर से निकलने को तैयार ही नहीं। फिर पाठकजी घुरफेंकन, भगतजी, फेंकू और डोमन को लेकर पहुँचे तो सब वोट निकलने लगे।

दलगंजन सिंह अपना गोल लिये बूथ से कुछ दूर हट कर एक सघन पेड़ की छाया में बैठे वोटरों को कार्ड बँटवा रहे हैं। इस समय बाबूगंज का वोट पास हो रहा है, इसलिए वह खूब मूँछ पर ताव दे रहे हैं।

'क्यों बन्दूकी! वोट पास होता है तो ऐसे! —एकदम झाड़ कर हिते-नाते सब जुट गए हैं। पाठक का माथा ठंढा हो गया। अपने को इस इलाके का राजा समझने लगा है। सारा गरूर टूट गया।'

दलगंजन सिंह ने मूँछ पर फिर ताव दिया।

'हाँ, चाचा, लाख जमींदारी चली जाय, मगर बड़ी हवेली की इज्जत अभी भी बनी की बनी है। वोट के बाद न चमारों को दुरुस्त किया

जाएगा ! अभी बड़ा तंग किए हैं—हरामजादों को मजा चखा दूँगा।"—बन्दूकी ने कड़क कर कहा।

'अरे मालिक, अरे ओ मालिक ! गाँवें चलीं सभे—गाँवें।'—बिन्दा हाँफता हुआ चिल्लाता दौड़ा चला आ रहा है।

'ऐं, क्या बात है ?'—सबके कान खड़े हो गए।

'अरे मालिक, सूरज सिंह और उनका पट्टीदार नवलाख सिंह में बड़ा तनातनी हो गइल बा। दूनों तरफ से बन्दूक निकल गइल बा। ई ओट जे ना करावे। सूरज सिंह कहत बाड़न कि हमरा खानदान के सब ओट पेड़ छाप में गिरी और नवलाख सिंह कहत बाड़न कि अबकी तोहार जमानत जब्त होके रही। बस, एकरे में बाताबाती हो गइल—दूनों ओर से दुनाली निकल गइल। भीतर मौगी सब छाती पीटत बाड़ी स। जल्दी चलीं जा।'—एक सुर में बिन्दा कह गया।

'बन्दूकी, तुम अभी साइकिल लेकर गाँव भागो—मैं दारोगाजी को जीप से फोर्स लेकर भेजवा रहा हूँ—इस समय मेरा बूथ से हटना ठीक नहीं। दिन ढल रहा है—पाठक की पार्टी कोई चाल न चल दे—जा पट्ठा !—तीर-सा निकल जा—शाबाश !'—दलगंजन सिंह ने बन्दूकी को गाँव रवाना कर झट बूथ के हाते में जाकर बी० डी० ओ० तथा दारोगाजी को सारा किस्सा कह सुनाया। नरेन्द्र ने रामप्रसाद दारोगा की तैनाती झट बाबूगंज में कर दी और चेता दिया कि जब तक मामला शान्त न हो जाय, वह वहाँ से टले नहीं। यहाँ उस्मान खाँ सब सँभाल लेगा। झमेलावाला 'स्पौट' हरिजन महाल था। उसका करीब-करीब सब वोट अब तक पास हो चुका है।

'बिलट्ट !'

'जी।'

'शहर से मैं एक टीन कॉफी लाया था, देखो—है कि बरबाद हो गया ?'

'हुजूर, खराब क्यों होगा—मैंने बड़े जतन से उसे रखा है।'

'तो तीन कप कॉफी बनाओ। कॉफी बनाना तो मैंने तुम्हें सिखा दिया है।'

'हाँ, मैं बना लूँगा....मगर सरकार, दस बजे रात को आप कॉफी पियेंगे तो खायेंगे कब ? खाना तैयार है—आपका, डाक्टर साहब का और चचा का भी। मगर पाँड़े शाम को ही आपका आर्डर सुना गया था।'

'नहीं, थोड़ी देर बाद खाना खायेंगे—अभी कॉफी बनाओ। थकान से शरीर टूटा जा रहा है—भोर से जो एक पैर पर खड़ा रहा, अभी वोट गिनती कराकर ही तो बैठ पाया। कॉफी पीने से शरीर फरहर हो जाएगा।'

'साहब, आप कुबेरा कॉफी पियें—मैं नहीं पी सकूँगा—बिलटू ! मेरे लिए न बनाना—सिर्फ डाक्टर साहब और नरेन्द्र बाबू को ही पिलाओ।'—टेनी लाल ने आपत्ति की।

थोड़ी देर को तीनों चुप हैं—सिर्फ बिलटू चौके में खटर-पटर कर रहा है। शायद तीनों वोट के परिणाम पर सोच-विचार कर रहे हैं। फिर शान्त वातावरण को भंग करते हुए डाक्टर ने कहा—'तो पाठकजी गाँव के मुखिया हो ही गए !'

'जी, जनाब ! बाबूगंज और बसन्तपुर के मालिक !'—बूढ़े टेनी लाल ने चुटकी लेते हुए कहा।

'हाँ, वह तो हो ही गए ! देखो डाक्टर, मेरी भविष्यवाणी ठीक निकली। मैं जानता था कि हरिजन महाल एक सिरे से अपना सारा वोट पाठक को ही देगा और वही हुआ। हरिजन-वोट तीर की तरह सभी पाठक के बक्से में गिरे। रामभजन सिंह की पट्टी के भी हरिजन अपने पुराने मालिक को धोखा दे गए। दलगंजन सिंह और रामभजन सिंह के पास कोई दिमाग नहीं। भला बन्दूकी और किसुना को क्या वोट माँगने के लिए दौड़ा रहे थे ! ये दोनों बददाम छोकरे मिलते हुए वोट को भी भड़का देते थे। जमानत पर छूटे हुए बन्दूकी को वे क्यों घर-घर वोट माँगने के लिए भेजते थे—यह मुझे समझ में नहीं आया। फिर ये लाठी भाँजने लगे। बस, दो-चार घरों का मिलने वाला वोट भी भड़क गया।'—नरेन्द्र ने कहा।

ौर तो और, इसको मुझे कतई उम्मीद न थी कि सूरज सिंह नम्बर दो हो जाएगा।'—डाक्टर ने चकित होकर कहा।

'हाँ, उसने ख़ूब 'मेक-अप' किया। नबी मियाँ, बेनीमाधव और गोधन ने जान लड़ा दी। कुछ वोट तो हरिजनों का उन्होंने काट ही दिया—खास कर बीनटोला का। और जाति के नाम पर बाबूगंज का भी उसे अच्छा वोट मिला। गोधन ने बनियों का वोट दिलाया ही। अजी, डाक्टर, पंचायत के चुनाव को क्या कहोगे? पाटा-पाटी से शुरू होकर वोट जाति के नाम पर आकर टिक गया। फिर वहाँ से टूटा तो छोटी जात और बड़ी जात की लड़ाई हो गई। यदि एक भी बैकवर्ड उम्मीदवार होता तो पाठक भी चित हो जाता। ऊँची जाति के वोट राजपूत, ब्राह्मण और कायस्थ बाँट लेते और नीची जाति सब एक होकर अपना बैकवर्ड उम्मीदवार जिता देती। और, आगे देखना, यही होगा। इस बार पाठक छोटी जातों के वोट से हो गया—हो गया, आगे बड़ा खतरा है।'—नरेन्द्र ने अपनी 'सर्वे-रिपोर्ट' पेश की।

'नरेन्द्र बाबू, कुछ भी हो—बड़ी हवेली वालों की इज्जत लुट गई। सदियों की बाप-दादा की बनाई हुई मर्यादा मिट्टी में मिल गई। उफ, जमाना क्या-से-क्या आ गया! आठ बजते-बजते सभी बबुआन बूथ से भाग निकले। जान पड़ा, उनके यहाँ कोई मर गया हो। ऐसी मुर्दनी छा गई उनके कैम्प पर। मैंने रामजनम सिंह और बरियार सिंह का जमाना देखा है। मेहर का राज पलटते उन्हें एक दिन भी न लगा। इस इलाके में क्या रोब-दाब था उनका! यदि आपके दादा किसी से दबते थे तो उन्हीं से। और, आज उन्हीं के खानदान की यह हालत!—बीच ही में दुम दबाकर भागना पड़ा! या भगवान! कौन दिन दिखाया तुमने आज! रावसाहब के दरबार से जब बाबू बरियार सिंह घोड़े

पर सवार हो, चार सवारों के साथ बाबूगंज की ओर बढ़ते तो क्या मजाल कि रास्ते में कोई अपनी खाट पर बैठा रह जाय या सर पर पगड़ी या गमछा रखे झुककर सलामी न दागे। एक बार डोमन का बाप खाट पर बैठा ही रह गया। बस, उनके एक सवार ने वहीं उसे कोड़े से मार कर ढेर कर दिया। सारा गाँव थर्र बोल गया। फिर किसको हिम्मत कि उनकी सवारी देखकर एक पल भी खाट पर बैठा रह जाय !....और अपने जमाने की नूरजहाँ—वही मेहरुन्निसा—उसका तो उन्होंने लोक ही छुड़वा दिया।....................

मेहर के लड़के मुन्ना बाबू बिलकुल राजसी ठाट-बाट, शान-शौकत में पल कर बड़े हुए। लालकोठी में ही आकर मौलवी साहब उर्दू-फारसी पढ़ा जाते और रामदीन मास्टर अंग्रेजी। उस जमाने में कच्ची उम्र में ही शादी हो जाती। बस, उनकी १५-१६ की उम्र होते-होते रावसाहब और मेहर की परेशानी बढ़ी कि मुन्ना बाबू की शादी कर दी जाय। मगर कहाँ ?—इस कहाँ का जवाब कहीं नहीं मिलता। आदमी घर पता लगाने के लिए छोड़े गए। कोई इसी तरह की लड़की मिले तो शादी पट जाय। कोई खानदानी लड़की तो मिलने से रही। कुछ दिनों बाद बड़ी मुश्किल से बनारस में किसी रईस की रखैल की बेटी का पता मिला। इसी पाठकजी के पिता तथा बाबू बरियार सिंह बनारस भेजे गए। उसके बाप को तो मुँहमाँगा वर मिल गया। दोनों को

यह सम्बन्ध मन लायक मिला। मामला पट गया। फिर क्या, तिलक चढ़ा, हल्दी लगी, बारात सजी, बनारस गई, खूब जशन हुआ—सात दिनों तक वहाँ महफिल और मयखाना दोनों का दौर चलता रहा। इलाके भर के मानिंद लोग बराती बनकर गए रहे। जब बारात लौटी तो बसन्तपुर में भी जशन का दूसरा दौर चला। मेहर तो अपने आप में न थी। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे। घर में बहू उतार कर वह भी पूरी सास की मर्यादा निभाने को आतुर हो उठी। रावसाहब भी बड़े मगन रहे। राजमणि देवी हर रस्म में हिस्सा लेतीं और खूब लेतीं-देतीं। मगर राजरानी देवी सदा की तरह एकदम दरकिनार रहीं—बेलौस।

....साल पर साल बीतते चले गए। जिन्दगी राग और रंग में नहाती रही। मेहर ने समझा कि यही जिन्दगी उसकी अपनी जिन्दगी बनकर रह जाएगी। मगर....नहीं—राग और रंग के चिलमन से एक बदसूरत सूरत भी दिख जाती जो सारी जिन्दगी को मौत का पैगाम सुना देती।

रावसाहब बड़े सिद्धहस्त घुड़सवार थे। उनके अस्तबल में अरबी और वलैर घोड़ों की एक कतार खड़ी रहती। एक दिन भोरे-भोरे मुंशी टेनी लाल और पीरबक्श को बुलाकर उन्होंने ऑर्डर दिया कि अभी घोड़े कसे जायँ—वह पलाशवन में शिकार खेलने जाएंगे। कई एक बन्दूक और उनका राइफल भी चले। बस, सभी शिकार के साथी झट तैयार हो हाजिर हो गए। सूर्योदय के पहले ही उनकी सवारी पलाशवन की ओर बढ़ चली। पलाशवन तो नाम का ही पलाशवन था। दो-चार इधर-उधर पलाश के पेड़। बाकी सब जंगली पेड़ों से ही भरा घनघोर जंगल....इसके नाम से ही

सभी थर्रा जाते मगर दिलेर रावसाहब को मौत से ही जूझने में मजा आता रहा।

पहले वनमुर्गियाँ मिलीं। उनका शिकार हुआ। फिर तीतर मिले। हारियल मिले। रावसाहब चाहते रहे कि वन से झट निकल कर बाहर के मैदान में हिरण का शिकार किया जाय—मगर जाने क्यों, उनका घोड़ा एकाएक ऐसा भड़का कि सभी दंग रह गए। रावसाहब जबतक उसे सँभालते कि वह तीर की तरह सीधे भागने लगा। सभी घबड़ाए कि इस घनघोर जंगल में वह इतनी तेजी से भला भाग कैसे सकता है····यह क्या हुआ! ····कि तबतक एक नीचे लटके हुए पेड़ की शाख से रावसाहब का सर टकरा गया—उनका साफा उसी पेड़ में उलझ गया और घोड़ा वहीं हिनहिनाने लगा। सभी घुड़सवार अपने-अपने घोड़े से उतर कर उधर ही भागे। रावसाहब को अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में घोड़े की पीठ पर से उतार कर जमीन पर दरी बिछाकर लिटाया गया, मुँह पर पानी के छींटे मारे गए, मगर सर पर चोट इतनी सख्त थी कि वह कुछ बोल न सके—हाथ-पैर काँपते रहे, फिर एकाएक शून्य हो गए। उस घनघोर जंगल में बसन्त-पुर का सितारा डूब गया।

टेनी लाल और पीरबक्श को अब यही चिन्ता सताने लगी कि अब किस मुँह से बसन्तपुर लौटेंगे—वहाँ की जनता से, राजरानी से, मेहर से कैसे इस घटना की कहानी कह सुनाएँगे—किस मुहूर्त्त में वे गाँव से निकले—क्या से क्या हो गया!

रावसाहब का मृत शरीर जब बसन्तपुर पहुँचा तो हाहाकार मच गया।

मेहर पागल की तरह लालकोठी के फाटक की ओर दौड़ी मगर मुन्ना बाबू ने उसे हाथ फैलाकर रोक लिया। दरबार हॉल में उनका मृत शरीर लाकर रखा गया। मेहर ने अपनी चूड़ियाँ फोड़ दीं—माँग का सिन्दूर पोंछ डाला और उनके पैरों को चूमती हुई बेहोश हो गई।

फिर लाश को लोग महल मे ले गए। राजरानी की तो बड़ी बुरी हालत थी। उनके पैरों पर लोटते हुए उसने इतना ही कहा—तुम आजीवन मुझे छलते रहे और आज मौत ने भी मुझे छलकर ही तुम्हें मुझसे छुड़ा लिया। राजमणि देवी जड़वत् हो गईं।

उन दिनों ट्रक नहीं—ट्रेन नहीं। बसन्तपुर की जनता ने सौ मील से ऊपर ही अपने कंधे पर ढोकर अपने मालिक की लाश को बनारस मणिकर्णिका घाट पर पहुँचाकर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कराई।

....

....

....

अब बसन्तपुर के सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा है—?—?—? ....अब आगे कौन ? ....कौन ? ....क्या ? ....क्या ? ....

कि बाबू रामजनम सिंह और बाबू बरियार सिंह ने गरज कर कहा—'रंडी-पतुरिया का बेटा बसन्तपुर—बाबूगंज महाल का मालिक नहीं हो सकता—नहीं हो सकता। कौन कहता है कि मुन्ना हमारा मालिक होगा ?—उस साले की हम जीभ निकाल लेंगे। और यदि राजमणि देवी कुछ चीं-चपड़ करेंगी तो उन्हें भी हम रास्ता दिखा देंगे। यह महल का मामला नहीं, इन दो गाँवों में बसी तथा इस इलाके में जनमी सारी जनता का

मामला है। उनकी आवाज के साथ सारी जनता की आवाज मिल गई।

इसी बीच मेहर की माँ तथा चाचा शफीउल रहमान खाँ अपने हालो-मुहाली के साथ अपने गाँव से आकर लालकोठी में दाखिल हो गए थे। मामला तन गया था। मेहर अपना राज, अपना हक छोड़ने को तैयार नहीं—खाँ साहब के आने से उसे पूरा बल मिल गया था—खाँ साहब नाबालिग के गार्जियन होने का सपना देखने लगे।

रामजनम सिंह तथा बरियार सिंह ने उन्हें खूब समझाया—कुछ गुजारा लेकर वे शहर चले जाएँ और शरीफ की जिन्दगी बिताएँ मगर मेहर, उसकी माँ और चाचा पर शामत सवार थी—सुलझे हुए रास्ते पर चलने को वे तैयार न हुए। बुरे दिन बदे थे।..........फिर सारी जनता भड़क उठी।

एक दिन बाबू बरियार सिंह और रामजनम सिंह पालकी लिवाए लालकोठी पर पहुँचे तो देखा—खाँ साहब रावसाहब के दरबार हॉल में उनकी गंगाजमुनी कुर्सी पर बैठे मूँछ पर ताव दे रहे हैं और उनके हालो-मुहाली फर्श पर बैठे उनका गुणगान कर रहे हैं। बूटेदार किमखाब के अचकन पहिने और साफे पर कलँगी लगाए उन्होंने शायद अपने को बसन्तपुर का मालिक मान लिया था। दोनों सिंहों के लिए यह दृश्य असह्य था। वे भीड़ लिये दरबार हॉल में घुसे और गंगाजमुनी कुर्सी पर से ढकेल कर खाँ को जमीन पर पटक दिया। वह चारो खाने चित। साफा कहीं फेंकाया, हीरे की कलँगी कहीं। उनके दरबारी तो भीड़ देखते ही अन्दर भाग गए।

—'देख, अपना भला चाहता है तो अभी इसी पालकी पर मेहर के साथ शहर भाग जा—बाइज्जत; वरना तुझे टुकड़े-टुकड़े करके सारी कोठी

लुटवा लूँगा। भला रंडी का बेटा हमारा मालिक होगा ?—छिः ! हम अपना धर्म नहीं बिगाड़ेंगे !'

जान का मोह सबको होता है। यह रुख और वह भीड़ देखकर खाँ और मेहर दोनों सहम उठे। वे झट कोठी छोड़ने को तैयार हो गए और उसी समय तीन ओहार लगी पालकियों पर सभी को बिठाकर बरियार सिंह और रामजनम सिंह ने उन्हें शहर भिजवा दिया। राजमणि देवी कुछ कर न सकीं।

दूसरे दिन राजरानी का बेटा वसन्तपुर का मालिक घोषित कर दिया गया।

....तो यह रोब था उन दिनों बाबूगंज के बाबुओं का—एकछत्र राज था उनका—उनके इशारे पर रियासतें बनती-बिगड़ती रहीं...मगर आज........बस, किस्मत का रोना ही रह गया—यही जमाना है और—

'जमाने का शिकवा न कर रोनेवाले,
जमाना नहीं साथ देता किसी का।'

नरेन्द्र चुप है। डाक्टर भी चुप।

टेनी बाबा इस मूड में हैं कि सारी रात शायद ऐसे ही कट जाय—ऐसे ही कट जाय....

बसन्तपुर का चप्पा-चप्पा बोलता है....उसका कण-कण हँसता है....कभी रोता है....बिलखता है.......फिर ठठा पड़ता है........ऐसी ही उसकी कहानी है....बड़ी पुरजोर....पुरनम !

'ओ पानकुँवर !—पानकुँवर !····पान····अरी, कहाँ हो ?'—मंगर पाँड़े पुकारता हुआ अन्दर घुसा।

·····'अरी, कहाँ हो····कहाँ····ए लो !—चूल्हा भी आज ठंढा पड़ा है। आखिर बात क्या है····खाना नहीं बनेगा क्या ?·····'—वह उसकी कोठरी में घुसता है।

पानकुँवर रुआँसा चेहरा लिये अपनी खाट पर बेसुध पड़ी है।

'अरे, तुम यहाँ हो और मैं तुम्हें चौके में ढूँढ़ रहा हूँ। खाना नहीं बनेगा क्या ? ऑफिस से थका-माँदा मैं चला आ रहा हूँ मगर यहाँ तो खाने का कोई ठिकाना ही नहीं। उठो—उठो·····।'

पानकुँवर बेसुध।

'अरी, तुम्हें हो क्या गया है ? बीमार हो क्या ?'

वह उसके सर पर हाथ फेरता है।

'नहीं-नहीं, सर तो ठंढा पड़ा है।'

फिर वह उसे अपने हाथों के सहारे उठाकर बैठा देता है—वह साड़ी ठीक करती बैठ जाती है।

'क्यों पानकुँवर, आखिर बात क्या है ? तू इस तरह मुरझाई हुई-सी''''पड़ी-पड़ी क्या सर चीर रही है ? मैं भी तो सुनूँ—जरूर कोई बात है।'

'तुम्हारे सुनने की कोई बात नहीं है—जो होना था सो हो गया। अब मेरा अन्त नजदीक आ गया है—अब मैं चली''''

वह रो पड़ी। पाँड़े घबड़ा गया।

'ऐसा क्यों पान—ऐसा क्यों ? तू क्यों जान देगी—तुझे क्या हो गया ?'

'मेरा सर्वस्व लुट गया''''मैं कहीं की न रही। तुमने मुझे बरबाद कर दिया।'—वह पुक्का फाड़ कर रोने लगी।

पाँड़े और भी घबड़ाया।

'पान, मुझसे कौन-सी गलती हुई ?'

'मैं मारी गई—मैं लुट गई—अब मैं क्या करूँ ?''''मुझे जहर दे दो—माहुर दे दो—दो बित्ता जमीन में घुसने को भी मेरे लिए अब जगह नहीं—ओ धरती माता ! मुझे अपनी गोद में ले लो''''—वह पागल हो कुएँ की ओर दौड़ती है। चाहती है कुएँ में कूद जाए''''मगर पाँड़े उसे पकड़ लेता है।

'नहीं-नहीं, मुझे छोड़ दो''''मुझे मर जाने दो।'

वह चिल्ला पड़ती है।

'पागल न बनो पान ! हल्ला करोगी तो सारा टोला जुट जाएगा—फिर तुम जानना। कुएँ में कूदने से प्राण नहीं निकलेगा—मगर बाद में

हम दोनों को जेल की हवा खानी पड़ेगी। चल-चल, कोठरी में चल—सारी बात बता।'

पाँड़े उसे अपने अंक में लिये कोठरी में लाता है—वह सारी बात बता देती है।

अब पाँड़े के पगलाने की बारी आई।····वह रो पड़ा—'उफ, यह तुमने क्या सुना दिया····या भगवान ! ऐसा क्यों हो गया ? एक बेवा का जीवन हमने बरबाद कर दिया !—अब क्या होगा····क्या····?'

उसके बदन से हर-हर पसीना चूने लगा। वह घबड़ा उठा। जी चाहा—भाग जाए—दूर—बहुत दूर, जहाँ उसे कोई मंगर पाँड़े कहकर न पुकारे—नई दुनिया हो, नए लोगबाग। वह छटपटाने लगा। उसकी परीशानी देखकर पानकुँवर अपनी परीशानी भूलने लगी।

'पान, आज रात में ही यहाँ से भाग चलें नहीं तो बड़ा बुरा होगा—गाँववाले हमें काटकर खा जाएँगे—एक विधवा को गर्भ रह गया···· राम-राम !····छि:····छि:····! यह बात छिपेगी नहीं।'—पाँड़े खाट पर पड़े-पड़े करवटें बदलता रहा।

'अभी हिम्मत न हारो····अभी बहुत रास्ते खुले हैं। जब सभी रास्ते बन्द हो जाएँगे तब तो भागना ही पड़ेगा। मैं औरत जाति····आखिर कौन मुँह दिखाऊँगी ?'

पान अब शान्त हो चुकी है। उसकी हिम्मत की बात सुनकर पाँड़े को

एक सहारा मिल गया। झट उठ बैठा—'बताओ, कौन-सा रास्ता है?—रास्ता—बता····'—उसने उसकी हथेलियों को अपने हाथ में ले लिया।

'कोई जुगत लगाकर वैद्यजी के यहाँ से····।'

'ओ! अब समझा····समझा····लो, मैं अभी जाता हूँ····अभी····।'

'नहीं-नहीं, जल्दबाजी न करो—लोग शक करने लगेंगे—किसी और बहाने लेना—किसी और के नाम से····।'

पाँड़े चुप बैठ गया। उसके सामने से धरती नाच गई। एक क्षण में उसकी सारी दुनिया ही लुट चली। यदि कामयाब न हुआ तो क्या परीशानी भुगतनी पड़ेगी—उसकी कल्पना से ही वह सिहर उठा।

कि दरवाजे पर वही ठक-ठक की आवाज—उसे जान पड़ा कि उसकी छाती पर कोई हथौड़ा पीट रहा है।

'ओ पाँड़े महाराज! ओ पँड़ाइन जी! किल्ली खोलीं—किल्ली। हम हुईं डोमन—लकड़ी लाइल बानीं।' —डोमन ने चिल्लाना शुरू किया।

'ओह! यह तनिक भी चैन नहीं लेने देता। गाहे-बगाहे लकड़ी लिये पहुँच जाता है और चिल्लाने लगता है। अब घंटों सर खाएगा—गाँव भर का पचड़ा गाएगा।' —पाँड़े फिर बड़ा अशान्त हो गया। पानकुँवर चौके में घुस गई।

····झख मार कर उसने दरवाजा खोल दिया। डोमन एक बोझा लकड़ी वहीं बगल में फेंक कर अपने सर का पसीना पोंछने लगा। ········फिर बोला—'पाव लागूँ बाबा, मन ठीक बा नू····बड़ा उदास लागत बानीं।'

'हाँ, सब ठीक ही है। साँझ को ऑफिस से आकर मन बड़ा थका

रहता है····दिन भर खड़े-खड़े····और अब अवस्था भो दूसरी हुई····ज्यादा दौड़धूप हो नहीं पाती है····मगर क्या करूँ, यह ऐसा बी० डी० ओ० आया है कि एक क्षण भी चैन नहीं लेने देता—सारे ऑफिस से इसकी पटती नहीं, इसलिए रोज झमेला लगाए रहता है।'

'महाराज जी, ऑफिस से कैसे पटे ? सारा ऑफिस चोर और सिर्फ मालिक ईमानदार—फिर पटरी—कैसी !'

'हाँ, यह भी बात है।'

'अब पाठक बाबा मुखिया हुए—देखिए—क्या होता है !'

'होगा क्या ! ····अभी क्या कम हो चुका है ! सारा गाँव पाटा-पाटी में बह गया है। रोज किसी का खेत चरा दिया जाता है या किसी का गाय-बैल चोरी चला जाता है।'

'राम जाने, मैं इससे दूर ही रहता हूँ। बलचनवा-जिगना रिक्शा से जो कमा लाएँ—उसीसे पेट चल जाता है। अब उसमें भी बड़ी मिहनत है—रात-दिन बेचारे खटते रहते हैं। बस, जीप, तीनपहिया, फटफटिया जान मारे हुए है। ····सुनता हूँ, अब सरपंच के लिए दौड़-धूप हो रही है। सब पार्टीवाले बाबा के दालान में जुटे रहते हैं।'

'हाँ, सुना—सोहन साह भी सरपंच के उम्मीदवार हैं···· ।'

'तो लो, सारी लुटिया डूबी। भइल इहे गरीबका के फायदा।

'तुम्हीं न कहते थे कि उनके नए मकान में मजदूरी कमाने के तुम्हारे पैसे आजतक नहीं मिले—दौड़ते-दौड़ते तुम्हारा पैर घिस गया।'

'जी, एक पैसा नहीं मिला।' —डोमन ने बड़े कातर होकर कहा।

बातों में मन बहल जाने से पाँड़े का जी कुछ ठीक हो गया। फिर बहुत देर तक डोमन से बातें करता रहा—मन बहलाता रहा ताकि वह भूत उसे फिर न धर दबाए।

....कि पानकुँवर ने किवाड़ की ओट से आवाज लगाई—'रोटी-साग तैयार है....आकर खा लें।'

डोमन दंडवत कर चलता बना।

पं० वीरमणि पाठक, मुखिया—बसन्तपुर-बाबूगंज महाल का दालान उनके दरबारियों से भरा है। सरपंच के चुनाव तथा कार्यसमिति के संगठन पर बात-विचार हो रहा है। तरह-तरह के विचार आ रहे हैं—जा रहे हैं। एक ने कहा—'बाबुओं को मिला लेना जरूरी है नहीं तो वे एलेक्शन पिटीशन देने से बाज नहीं आएंगे। आँख की किरकिरी अब बाबूगंज ही है। इसलिए उसे मिला लेने का यही आसान तरीका है कि वहीं का कोई सरपंच चुन लिया जाय।' दूसरे ने कहा—'हरगिज नहीं! हम उनकी खुशामद नहीं करेंगे। उन्होंने हमें हराने का कोई भी दकीका उठा नहीं रखा। हम टूट जाएंगे मगर झुकेंगे नहीं।' तीसरे ने कहा—'विरोधी पार्टी से कोई सरपंच चुना जाय—ग्रामपंचायत के चुनाव में सभी पार्टियों का विलयन हो और सिर्फ गाँव की भलाई के लिए एक पार्टी हो।' घुरफेंकन ने कहा—'हमलोग तो सिर्फ बाबा को जानते हैं—बाबा जिसको-जिसको चुन लेंगे—हम भी उन्हें मान लेंगे।'

बाबा इस विचार को सुनकर फूले नहीं समाए! खुशी से नाच उठे।

अब बनिया महाल की बारी आई—'बाबा ! बनियों का वोट आपको झार कर मिला है। इस बार हमारी माँग है कि हममें से कोई सरपंच चुना जाय।'

बाबा मुस्कुरा उठे और सोहन साह उन्हें ललचाई हुई दृष्टि से देखने लगा। मगर बाबा उधर मुखातिब ही नहीं हुए।

सारी मण्डली चुप है। बाबा भी गम्भीर मुद्रा में लीन हो गए हैं।

कि सुग्गी ने कहा—'बाबा, मैं तो पुराना कार्यकर्त्ता हूँ। अब वोट का जमाना खत्म हो गया तो लोगबाग मुझे भी भूल जाएँगे। अब मेरी कौन सुनेगा ? फिर पाँच साल बाद देखा जाएगा। हम तो यही कहेंगे कि बहुतों ने बहुत कहा—अब आप ही अपने श्रीमुख से कुछ कह दें।'

बाबा ने अपनी मुद्रा बदली। बसन्तपुर-बाबूगंज के मुखिया का नकाब चढ़ाया और बुलन्द आवाज में बोले—'पंचो ! यह जनतंत्र का जमाना है। इसलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की ख्वाहिशों को मद्देनजर रखते हुए हमारा सरपंच एक हरिजन हो।'

तालियों की गड़गड़ाहट। 'बाबा की जय हो—बाबा की जय !' का तुमुल स्वर।

'अभी ठहरो·····'

फिर शान्ति।

'और हाँ, हमारी कार्यसमिति में बाबू दलगंजन सिंह, गोधन साह, सूरज सिंह, बिहारी सिंह, बेनीमाधव आदि सभी रहें····हमें इससे बड़ी

प्रसन्नता होगी।'—बाबा ने अपनी राय दे दी—वहाँ बैठे पंचों ने उसपर अपनी मुहर लगा दी।

जब सभी जाने लगे तो सोहन साह बैठे ही रह गए। बाबा ने उन्हें अपने कमरे में ले जाकर कहा—'क्यों सोहन! तुम बड़े उदास दीख रहे हो····।'

'बाबा! मुझ पर कोई ख्याल नहीं हुआ!'

'तुम हो बेवकूफ! भला बनियां-महाजन का काम है गाँव के पचड़े में पड़ना? तुमको तो सभी से व्यवसाय करना है। सरपंची लेकर झखने लगोगे।'

'बाबा, बहुत पैसे खर्च हो गए चुनाव में। सोचा था—सरपंची में कुछ कमा लेता···।'

'हाँ, तुम्हारा पैसा जरूर खर्च हुआ है—पीछे बाबुओं ने पैसे छींट दिए तो मैं क्या करता! मुझे भी सब रास्ता चोरी-चुप्पे अख्तियार करना पड़ा। मगर तुम तनिक भी चिन्ता न करो। विदेशी खाद्य-बिक्री की एजेंसी तुम्हीं को दिलवाऊँगा। अब तो मैं कुर्सी पर बैठ गया। अब मेरी अवहेलना कोई नहीं कर सकता। मालामाल हो जाओगे इसी एजेंसी से।'—बाबा ने उसकी पीठ ठोंक दी।

सोहन साह जैसे सातवें आसमान पर चला गया।

'ओह! विदेशी खाद्य की एजेंसी! तब तो सोना बरसेगा—सोना! धन्य हो बाबा का—जय हो बाबा का!'

दो अक्टूबर—गांधीजयन्ती-दिवस। कहीं कोई कोलाहल नहीं। बसन्तपुर और दिनों की तरह आज भी जगा—फिर जगा-जगा ऊँघता रहा। रामचन्द्र की दूकान पर गर्म-गर्म जलेबियाँ छनती रहीं, बिकती रहीं। इमलीतरे तेल की पकौड़ियाँ तलती जातीं और खटाई की चटनी के साथ बिकती जातीं। गोधन के दालान में चुक्कड़ में चाय बलगोबिना ढोता जा रहा है। पाठकजी इनारे के चबूतरे पर स्नान-पूजा में बझे हुए हैं। डोमन अपनी खाट पर जमे हुए उड़िसों को मारने के फिराक में उसकी सुतली खोल रहा है। बी० डी० ओ० साहब अपनी सुबह की चाय ले रहे हैं। डाक्टर साहब मरीज देखने की तैयारी में जिगना का रिक्शा जल्द बुलवाने को आदमी पर आदमी भेज रहे हैं। औरतें चूल्हों में आग जलाकर झटपट खाना बना देने को तैयार बैठी हैं। उधर चरवाहे गलियों से मवेशियों को हाँक-हाँक कर चराने के लिए कहीं दूर लिये चले जा रहे हैं और बेचारा सुग्गी!····टोले-टोले जाकर लोगों को जगा रहा है—'आज गांधी बाबा की जयन्ती है—गांधी मैदान में जहाँ गायडाढ़ लगता है, गोवर्द्धन पूजा

के दिन, वहीं एक कोने में मैं गांधी बाबा की मूर्ति आज स्थापना करने जा रहा हूँ—तीन बजे शाम को—जरूर आइयो भाइयो—भूलना नहीं—मर्द, औरत, बच्चे, बूढ़े—सभी। मुखिया जी के हाथों यह कार्य सम्पन्न होगा। संगमरमर की मूर्ति।

लोग हँसते और कहते—यह पगलवा क्या बोल रहा है!....यह आज कौन-सा तमाशा लेकर उठा है—संगमरमर की मूर्ति का पैसा यह भुखड़ा कहाँ से लाया—अरे, 'ओट' में पाठक से कमाया है—वही खर्च कर रहा है—बेवकूफ है—पैसा बचाकर बुढ़ापे में खाने को रख लेता—इस तरह फूँक देने से तो फिर फटकन्नलाल के दलान ? रोज भूखों मरने लगेगा और गाँव को पाप लगेगा यदि यह कहीं भूखों मर गया।....उल्लू है—बेवकूफ है—पागल है। सभी हँस रहे हैं—वह सचमुच पागल की तरह दौड़-दौड़ कर हर एक को साँझ की सभा में आने को न्योता दे रहा है।

शाम को बसन्तपुर के गांधी मैदान में खासी अच्छी भीड़ इकट्ठी हो गई है। मर्द, औरत, बूढ़े, बच्चे और मिडिल स्कूल के विद्यार्थी—सभी। दो-चार खोमचे की दूकानें भी आ गई हैं। लकठो और चिनियाबादाम बिक रहे हैं। मिट्टी का एक गांधीचबूतरा बना है, उसी पर गांधीजी की संगमरमर की भव्य मूर्ति सफेद खादी से छिपाकर स्थापित है। दो चौकी मिलाकर एक 'डैस' बन गया है जिस पर माला पहिने पाठकजी बैठे हैं। बगल में बी० डी० ओ० साहब, डाक्टर साहब, मिडिल स्कूल के हेडमास्टर

साहब, बाबू दलगंजन सिंह, गोधन साह तथा सरपंच फेंकू दुसाध विराजमान हैं। एक बगल में सुग्गी भी बैठा है।

सभा की कार्यवाही शुरू हुई। पाठक बाबा ने गांधीजी की मूर्ति से खादी के कपड़े को हटाकर औपचारिक ढंग से अनावरण समारोह का श्रीगणेश किया। 'गांधीजी की जय' के नारे आसमान चूमने लगे और तालियों की गड़गड़ाहट के बीच सुग्गी ने पहले माल्यार्पण किया। फिर सभी ने गेंदा के फूल चढ़ाए, कुछ-एक ने मालाएँ भी दीं। बुढ़ियों ने पैसे भी चढ़ाए। कुछ ही क्षणों में फूल और मालाओं से वह मूर्ति बिलकुल ढँक गई तो बाबा ने कहना शुरू किया—'भाइयो! सुग्गी ने आज कमाल किया उसके त्याग की मेरे दिल में बड़ी कद्र है। उसकी वसीयत मैं आज पढ़कर सुना देता हूँ—उसने अपनी सारी जायदाद—यानी बाजार में खड़ा उसका छोटा खपड़ापोश मकान, शामिल इनारा और अमरूद का पेड़, बरतन-बासन सहित पीछे खंड, कुल तीन डिसमिल गोधन साह को लिख दिया है और उसके एवज में गोधन साह उसे ताजिंदगी दोनों शाम भोजन कराते रहेंगे और इस मूर्ति के लिए एक हजार रुपये शहर के कारीगर को देकर इसका बिल भुगतान करेंगे। गांधी बाबा के साथ सुग्गी की भी आज जय बोल दो।'

सभी सुग्गी की जय बोलकर ठठाकर हँस पड़े।

सुग्गी तो फूल कर कुप्पा हो गया था। उसे तो खुद पता नहीं कि वह आज कितने पानी में है। किसी का पैर छू रहा है तो किसी से आशीर्वाद ले रहा है। फिर सभी को मूर्ति के नजदीक ले जाकर मूर्ति की बनावट की प्रशंसा कर रहा है। बड़े-बुजुर्ग उसे बधाई दे रहे हैं।

कि भीड़ को चीरते हुए मुंशी टेनी लाल उसके समीप पहुँचे और उसकी पीठ ठोंकते हुए कहने लगे—'वाह सुग्गी, वाह ! तुमने गाँव की नाक रख ली। जो किसी ने नहीं किया वह तुमने कर दिखाया। दूध पीनेवाले मजनू तो बहुत हैं, खून देने वाले मजनू तो एक तुम्हीं निकले। खूब किया तुमने—खूब। अब बसन्तपुर अजर-अमर रहेगा। आखिर यहाँ किसी एक ने तो यह मिसाल खड़ी की—ब्रह्मस्थान की बगल में गांधीस्थान। एक बीते हुए कल की निशानी, एक आने वाले कल का सपना।'

टेनी बाबा फिर भीड़ में खो गए। सुग्गी सिर्फ 'जी', 'जी', 'जी' करता रहा—उसको इतनी अक्ल कहाँ कि टेनी बाबा की इन सभी बातों को समझ सके—निपढ़ देहाती—सिर्फ श्रद्धा से झंडा ढोने वाला कार्यकर्त्ता।

'पान, तुम्हें गाँव में किसी ने देखा तो नहीं है ?'

'मुझे कौन देखेगा ?—मैं निकलती ही कहाँ हूँ ? और दीदी के मरने के बाद तुम्हारे यहाँ अब कोई आता ही कहाँ है ! हाँ, डोमन मुझे अक्सर देखता रहा है।'

'तो एक बात का अब ख्याल रख। डोमन जब आवाज लगाए तो कोठरी में घुस जाया करो। डोमना है बड़ा बदमाश। जब भी आता है, तुम्हें कनखी से निहारता या खोजता रहता है—कभी मुसकी भी मारता है, आँख भी मटकाता है। इस शरीर को उसे दिखा देना खतरे से खाली नहीं। और हाँ, जब कभी कोई अहिरिन गोंइठा लेकर या कोई फेरीवाला मनिहारी का सामान लेकर आवाज लगाए तो अब कभी भी दरवाजा न खोलना—वरना तुम जानना। गाँववाले काटकर धर देंगे।'—पाँड़े ने बड़ा गम्भीर होकर उसे चेताया।

'ना बाबा, ना, मैं सूरज की रोशनी से भी अब भागती हूँ।'—इतना कहकर पानकुँवर आसमान में शून्य दृष्टि से देखने लगी और उधर डोमन

दरवाजा पीटने लगा—'पाँड़ेजी, दरवाजा खोलीं। हर घड़ी किल्ली का ठोंकले रहीला ? कौन चोर-चुहाड़ आवता ?'

'अरे, भागो-भागो, फिर वह भूत आ गया। तुम अपनी कोठरी का दरवाजा बन्द कर देना—मैं चौके में जाकर खटर-पटर करता हूँ....।'—पाँड़े घबड़ा उठा।

'ठहरो, चूल्हा फूँक रहा हूँ, अभी आया।'—कहता पाँड़े चौके में खटर-पटर करने लगा।

'माथा दुखाता—बोझा सब एहिजे गिर जाई—खोलीं—जल्दी खोलीं।'

पाँड़े चौके से आकर दरवाजा खोलता है। डोमन लकड़ी का बोझा कहीं बगल में गिरा देता है।

'अभी तो सूखी लकड़ी बहुत है, काहे को इतना कष्ट उठाते हो ? मैं तो जब जरूरत होती है, ऑफिस से खबर भिजवा ही देता हूँ।'

'सोचा—जब इधर आना ही है तो कुछ सूखी लकड़ी लेता ही चलूँ।'

'अच्छा, ठीक है। कहो, बच्चे सब ठीक-ठाक हैं न ?'

'हाँ, बच्चे तो सब ठीक ही हैं—अब सुखिया की शादी की चिन्ता सता रही है। पैसे जब हाथ में आने लगे तो खर्चा भी वैसा ही बढ़ गया। बलचनवा-जिगना को रोज तेल-फुलेल चाहिए—बाल ऐनक में देखकर सीटना चाहिए—चारखाने की कमीज और पैंट चाहिए—चप्पल भी चाहिए। तो पैसे अब बचते कहाँ हैं ? इमलीतरे की दूकान से कलिया एक

बार जरूर ही खा आते हैं। बड़ा कुफ्त है !''''—डोमन माथा पीटने लगा।

'तुम्हारी भी हालत नोनिआइन की बेटी की तरह है—कोई कल चैन नहीं—नोनिआइन की बेटी को न नइहरवे सुख, न ससुरवे सुख।'

'बस-बस, महाराज जी, वही हालत है।''''मगर आपका भी तो वही हाल है। देखता हूँ, चूल्हा फूँक रहे हैं।'

'चूल्हा नहीं फूँकता, करम कूट रहा हूँ।'

'तो पँड़ाइन बीमार हैं क्या ?'

'नहीं, अपने घर चली गई। दूसरे घर की औरत, आखिर कितने दिन मेरे यहाँ रहती ? वह तो आई थी मेरी स्त्री की सेवा करने—उसकी मृत्यु के बाद मुझ पर तरस खाकर कुछ समय टिक गई। मगर उसे अब कितना रोकूँ—उसका भी अपना घर-दुआर है।'

'अरे बाबा, आप रख लेते तो अच्छा रहता—ऐसे अकेले-अकेले''''

—वह मुसकी मार बैठा।

'नहीं डोमन ! बड़ी जाति में ऐसा कहाँ होता है ? तुम लोग तो कुछ भी कर सकते हो—सब माफ ! मगर हमलोगों में तो हुक्का-पानी बन्द।'

'तब, मुखिया जी कैसा काम कर रहे हैं ?'

'गरीबों का कुछ भला करें, तब न जानें !'

'अभी तो शराब की दूकानवाले उस फेंकू को उन्होंने सरपंच बनवा

दिया है । वह तो अभी ही शराब में पानी मिलाकर पैसा पीट रहा है; आगे क्या करेगा—भगवान् जाने !'

'तो क्या तुमको सरपंच बनाते ? अँगूठा से ठप्पा लगाने के लिए ? वह कम-से-कम अपना नाम तो लिख लेता है—शहर आने-जाने से अँखफोर तो हो गया है ! तुम तो निपट देहाती.....'

'लीजिए, मैं थोड़े अपने को विदमान कहता हूँ—राम जाने, फेंकू..... बाबा क्या करेंगे—ओट के समय तो सभी अपनी-अपनी डींग हाँक जाते हैं....।'—डोमन कुछ अन्यमनस्क हो कह गया ।

ग्रामपंचायत, उसका चुनाव और संगठन, बाद की सरगर्मी, बाबुओं का रुख, रामजतन बाबू, बी० डी० ओ० साहब, डाक्टर साहब, गोधन, बिहारी, बलचनवा, जिगना, उनके रिक्शे—सभी विषयों पर चर्चा चलती रही । पाँड़े ने उससे जान छुड़ाने की बहुत कोशिश की, मगर डोमन जल्द उनका पिंड छोड़ता ही नहीं । आखिर तंग आकर उन्हें कहना पड़ा—'अच्छा डोमन, अब तुम जाओ—नहीं तो मैं आज भूखा ही रह जाऊँगा । अब छुट्टी दो तो चूल्हा फिर से जलाऊँ ।'

डोमन हँसता चलता बना । पाँड़े ने किल्ली ठोंक कर चैन की साँस ली ।

वह बसन्तपुर आया था बड़ी उम्मीदों—बड़े अरमानों का कारवाँ लेकर, मगर यहाँ की धरती उसे बड़ी ऊसर मिली—सूखी—निचाट। गाँवों के भी भाग्य होते हैं—जमीन भी सोती और जागती होती है। उसने सोचा था कि यदि बसन्तपुर के भाग सो गए हों तो उन्हें वह जगा देगा; यहाँ की धरती यदि मृतप्राय हो गई होगी तो उसे वह प्राणवन्त बना देगा। मगर क्या वह ऐसा कर पाया?—कर सकेगा?—यदि नहीं, तो क्यों नहीं—क्यों नहीं? जवानी के जज्बात धूप में धधकती चट्टानों पर टकरा कर चूर-चूर हो गए। वह अपने पलंग पर पड़ा-पड़ा सोच रहा है—सोच रहा है—माथा चीर रहा है—जीवन में कोई दूसरा आसरा ढूँढ़ रहा है—इस कोलाहल से, इन बेमानी नारों से, वायदों से, झूठे सम्बन्धों से दूर होकर जीने का नया रास्ता ढूँढ़ रहा है—अँधेरे में कहीं उजाला खोज रहा है....

कि टेनी बाबा अपनी लाठी टेकते उसके कमरे में दाखिल हो गए।

'आइए-आइए बाबा! कहिए, सब खैरियत तो है!'

'हाँ, सब ठीक है—अपनी कहिए। बहुत उदास-से दिखते हैं।'

'नहीं, यों ही ख्यालात में डूबा हुआ हूँ ....।'

'फाइलों के ?.....'

'नहीं, यों ही—ओ बिलट्टू ! दो कप कॉफी बनाओ जरा झट से ।'

'नहीं, मेरे लिए नहीं, मैं तो चाय पीऊँगा । काफी-टाफी मुझे पसन्द नहीं ।'—बाबा ने तपाक से टोका ।

नरेन्द्र को अपने अन्दर से बाहर आने में कुछ समय तो लग ही गया । जब आया तो बाबा से पूछा—'उस दिन आप बड़े भावुक हो गए थे। सुग्गी की पीठ ठोंकते हुए भावनाओं में बह गए थे—मैं दूर से ही आपके चेहरे का उतार-चढ़ाव देख रहा था ।'

'हाँ, आपने मुझे ठीक ही पहिचाना । जिन्दगी में दो ही बार मैं अपने जज्बात में बह गया हूँ—एक तो उस दिन गरीब-भूखे सुग्गी की वसीयत सुनकर और एक बार और !'

'वह कब ?'

'छोड़िए उन बातों को ।'

'नहीं-नहीं....।'—वह पलंग पर से उठकर कुर्सी पर आकर बैठ गया ।

........मेहर शहर क्या गई—उसकी जिन्दगी ही पलट गई। कहाँ महल की शान-शौकत और कहाँ गली के भीतर एक खपड़ेपोश मकान में जीवन-बसर । वह जो किसी ने कहा है न कि अमीरी की कब्र पर पनपी हुई गरीबी की घास बड़ी जहरीली होती है—वही उसका हाल हुआ । मुन्ना बाबू तो अपनी बीवी के साथ ससुराल भाग गए—दो जून रोटी कहाँ

से जुटाते—फिर शहर भर में हल्ला कि रंडी का बेटा—कहीं भी मुँह दिखाना दुश्वार—और बेचारी मेहर, जेवरों को बेच कर इस तन को ढँके रही। टेनी लाल उसके पास अक्सर जाते। एक हिन्दू विधवा के नेम का जीवन वह बिता रही थी—सफेद साड़ी, खाली कलाई, खाली माँग, सर तक आँचल—उन्हें देखती तो रो पड़ती। दूध-मलाई की पालिश में पली उसकी सूरत इस गरीबी की आँच में भी चमकती रहती। मगर अपने तो वह सूख कर काँटा हो गई थी। अक्सर कहती—राजरानी से मुझे ऐसी उम्मीद न थी। मैंने उसके साथ भलाई की, मगर उसने मेरे लिए कुछ न किया—मेरे परिवार को दर-दर ठोकरें खाने को छोड़ दिया—यह अन्याय! टेनी लाल समझाते—'आप गलत समझती हैं। उसके हाथ में था ही क्या! जैसे जमाने के जेल में आप कैदी, वैसे वह कैदी। उसे गलत न समझें....।'

मगर भला गुरबत में समझाने से कोई समझता है? जितना उसे समझाने की कोशिश करता उतना ही वह नासमझ होती गई। कभी-कभार मुन्ना बाबू भी अपनी ससुराल से उसके यहाँ आते, उसकी दयनीय हालत देखकर अपने साथ ले जाने को जिद ठान देते, मगर वह आखिर थी तो रावसाहब की जीवन-संगिनी—मान और मर्यादा की कायल—अपने बेटे की ससुराल में जाकर रहने से वह बराबर इनकार करती रही। बड़ी कमाश की वह औरत थी। गुरबत में वह मर-मिट गई, मगर कभी वहाँ नहीं गई। एक दिन उसकी भी दास्तान खतम हो गई और उसी के साथ-साथ मुन्ना बाबू का भी इस जिले से सदा के लिए सम्बन्ध टूट गया।

मगर दुनिया गोल है। जिन्दगी की मौज पर अक्सर बिछुड़े हुए लोग मिल जाते हैं। क्षण भर को ही सही, मगर किसी भी शक्ल में मिलते हैं जरूर।

एक कद्दावर नौजवान मुगलसराय प्लैटफॉर्म पर टहल रहा है। कभी इनक्वायरी ऑफिस में जाता और कभी सिगनल की ओर देखता। जैसे-जैसे गाड़ी लेट होती, वैसे-वैसे उसकी परेशानी बढ़ती जाती। बूढ़े टेनी लाल में इतनी शक्ति कहाँ कि बार-बार पता लगाते कि गाड़ी में कितनी देर है। वह उसी से पूछते—

'बेटे, गाड़ी का कुछ पता चला ?'

'नहीं बाबा।'

फिर पूछते।

फिर वही जवाब।

फिर पूछते।

फिर वही जवाब।

इस बाबा शब्द में उन्हें बड़ी मिठास मिलती—बड़ा अपनापन झलक जाता।

'तो आओ, यहीं बेंच पर बैठ रहो। कितनी बार दौड़ लगाओगे ? जब आएगी तो चढ़ जाएँगे।'

वह इस बार कुछ इतमीनान से बेंच पर उनकी बगल में बैठ जाता है। दोनों कुछ देर को चुप रहते हैं। फिर टेनी लाल पूछ बैठते हैं—

'तुम्हारी सूरत कुछ जानी-पहिचानी-सी लगती है।'

'नहीं तो, आपने मुझे यहाँ कभी न देखा होगा—मैं तो दूर—बहुत दूर—दक्षिण भारत के एक गोले-बारूद के सरकारी कारखाने में काम कर रहा हूँ। इधर तो सालों बाद वालिद के इन्तकाल की खबर सुनकर आया था। आज काम पर लौट रहा हूँ। आपने मुझे नहीं, किसी और को देखा होगा।'

टेनी लाल चुप।

'मगर मुझे इतमीनान नहीं होता—तुम्हें देखकर ऐसा लगता है कि जरूर मैंने तुम्हें कहीं देखा है। ऐसे जान पड़ता है, बहुत पुरानी मुलाकात हो।'

'नहीं-नहीं, इन्सान को अक्सर ऐसा भ्रम हो जाता है।'

'नहीं, भ्रम नहीं—यह सत्य है।'

'फिर आप जिद कर रहे हैं।'

टेनी लाल कुछ देर को चुप हो जाते हैं। उस पार पास करती मालगाड़ी के डब्बे को बड़े गौर से देख रहे हैं कि एकाएक बोल उठते हैं—जैसे फिर कोई बहुत पुरानी बात याद आ गई हो एकाएक—'तुम मुन्ना बाबू के तो बेटे नहीं हो!'

वह झट खड़ा हो जाता है। आवेश में आकर पूछता—'आप मुझे कैसे पहिचान गए?'

'बिलकुल वही देह-धजा—वही आँखें, वही घुँघराले बाल, वही रंग-रूप—या मौला ! तू नक्शा भी बनाता है तो ऐसा कि लाइन पर लाइन भिड़ जाए !....भला मैं तुम्हें नहीं पहिचानूँगा ?,

वह अवाक् हो उन्हें देख रहा है ।

वह कह बैठते हैं—'मैं हूँ टेनी । तुम्हारे बाप मेरे बारे में अक्सर तुमसे कहा करते होंगे ।'

'जी' कहता वह झट उनके पैरों को छूना चाहता है कि वह उसे गले से लगा लेते हैं—आँखों में आँसू—उसी हालत में पूछते हैं—'बेटा ! तुम्हारी शादी ? बाल-बच्चे ?'

'बाबा ! आपने भी अच्छा सवाल किया ! मेरे वालिद ने जो शर्मनाक जिन्दगी बिताई उससे मैंने यही सबक सीखा कि यह लाइन अब मुझ तक ही आकर मर-मिट जाय—आगे न बढ़े । मैं अभी भी अकेला हूँ और अकेला ही रहूँगा । इस शर्मनाक पीढ़ी का अब मेरे से ही अन्त होगा बाबा !'

टेनीलाल को लगा कि वह किसी इन्सान के जिस्म से नहीं—किसी काँटों भरे पेड़ के तने से लिपटे खड़े हैं । उन्हें जान पड़ा कि उनके सारे शरीर में लाखोंलाख काँटे चुभ रहे हैं और वे तड़प कर झट अलग हो गए । वह काँप रहे हैं—सारा शरीर एक बोझ-सा लगता है और माथा फटा जा रहा है ।....

....उसी हालत में गाड़ी आई । एक थर्ड क्लास कम्पार्टमेंट में उन्हें किसी तरह चढ़ा कर वह नौजवान कहीं और जाकर बैठ गया । भगवान् ने

उसने उनकी जान बचा दी। वह ईश्वर को लाख-लाख दुआ देते रहे। गाड़ी अपनी रफ्तार में भागती चली गई।

····टेनो बाबा कब के जा चुके हैं। नरेन्द्र की प्याली की कॉफी ठंडी हो गई है। मगर वह अभी भी अपने-आप में खोया आकाश के शून्य की ओर निहार रहा है, जो इस जीवन का, इस संसार का सबसे बड़ा प्रतीक है—शून्य ! केवल शून्य !!

डाक्टर साहब जम्हाई लेते उठ बैठते हैं। जाड़े का भोर—चारों ओर धुंध छाई है। उधर कई दिनों तक लगातार पानी, इधर कुहासा और धुंध। बाहर एक दूसरे की सूरत भी दूर से नहीं दिखती।

'चाय-वाय मिलेगी या नहीं ?'—वह रजाई के अन्दर से ही

. ।

'अभी लाई।'—उनकी पत्नी ने चौके से चिल्लाकर कहा।

'अभी-अभी क्या चिल्ला रही हो—जल्दी लाओ न !'

रमेश की माँ चाय लेकर पहुँचती है।

'कुछ सुना आपने ?'

'क्या ?'

'बाहर आँगन में अस्पताल की मेहतरानी खड़ी है। कहती है—एक औरत अपना बच्चा छोड़कर कहीं भाग गई।'

'ऐं ! किस बेड पर ?—वह चाय छोड़कर रजाई ओढ़े बाहर बरामदे में चले आते हैं।'

'ओ जमादारिन ! कौन बच्चा छोड़कर भाग गई है ?'

'आज पूरब वाला कमरा भोरे-भोरे बहारने गई तो देखा—चार नम्बर बेड खाली है और उस पर का बच्चा अकेला पड़ा-पड़ा रो रहा है। मैंने पाखाने में और कमरों में बहुत ढूँढ़ा मगर कहीं कुछ पता नहीं। और-और मरीजों से पूछा मगर कोई कुछ बता नहीं सकी। फिर मुझे कुछ शक हुआ तो दौड़ी-दौड़ी यहाँ आई।'

'हाँ, मुझे भी बराबर कुछ शक बना रहता था। वह मुँह कभी उघारती न थी—बराबर छिपाए रहती थी, इसीसे मुझे कभी-कभी शक हो जाता था। खैर, चलो।'

डाक्टर साहब चाय का प्याला लिये और शाल ओढ़े अस्पताल में चले जाते हैं। सभी मरीज और अस्पताल का स्टाफ उस बच्चे को घेरे खड़े हैं। एक औरत उसे खेला रही है। उनको देखकर सभी अलग हो जाते हैं। वह पूछते हैं—'क्यों, बात क्या है ? क्या वह अभी तक नहीं आई ?'

'नहीं।'

'तब ?····कोई उसका ठीक-ठीक पता बता सकता है ? रजिस्टर में तो नाम से कुछ पता नहीं चलता। अब देखता हूँ, पता बिलकुल अंटसंट है।'

'क्या वह ब्राह्मणी थी ?'

'देह-धजा से तो राजपूतिन ऐसी दीखती थी।'—एक ने कहा।

'नहीं हुजूर ! अहीरिन मालूम होती रही। निपट देहाती—वह मुँह तो कभी दिखाती ही नहीं थी।'

'नहीं, वह किसी बड़ी जाति की ही थी। मगर थी वह विधवा—एक बार बच्चे को दूध पिलाती मैंने उसकी माँग को देख लिया था—एकदम सूना, बियाबान।'

डाक्टर साहब धीरे-धीरे चाय का सिप लेते जाते हैं—इधर-उधर टहलते हैं—फिर कारनिस पर प्याला रख देते हैं और कहते हैं— '....तो चलो, आज से यह हमारा बेबी हुआ—चलो, घर में चलो।' —इतना कहकर वह उसे उठा लेते हैं और अपने क्वार्टर की ओर चल देते हैं। सभी अवाक् होकर देखते हैं।

'ओ, रमेश की माँ ! अरी, ओ....!'

'अभी आई—बात क्या है ?'

'लो एक और बच्चा। रमेश का छोटा भाई।' —वह हँस पड़ता है।

वह आती है तो देखती है कि सचमुच रमेश के बाबूजी एक नवजात शिशु लिये खड़े हैं—'धत्, यह क्या !'

'वही—जिसके बारे में भोरे-भोरे तुम्हें सूचना मिली थी। वह सचमुच भाग गई।—तो मैंने सोचा—आज से यह हमारा बच्चा होगा। रमेश का छोटा भाई।' —वह उस बच्चे को उसकी गोद में रख देते हैं।

रमेश की माँ मशीन की तरह उसे रख लेती है, मगर वह अवाक् है—आश्चर्यचकित। यह क्या ? यह क्या ? यह कैसे-कैसे ? अजीब ऊटपटाँग आदमी हैं ये भी....बिलकुल नासमझ। आगे-पीछे भी नहीं सोचते।

गाँवों में अफवाह सूरज की रोशनी से भी तेज फैलती है। कुहरा छँटते-छँटते इस घटना की खबर हर टोले में पहुँचती-पहुँचती बाबूगंज में भी फैल गई। अब लगी अटकलबाजी होने—आखिर वह बच्चा किसका रहा? यह कौन चाल है—कैसा फरेब है? पंचायत के चुनाव की सरगर्मी शान्त हो चली थी, इसलिए वहाँ की आबोहवा में एक सरगर्मी फिर आ गई। मजा आ गया।

'जय हो गोधन साह की—जय हो, जय हो!'

'बाबू सूरज सिंह की भी जय हो''''जय हो! कहा जाय, क्या हुक्म है?'

'हुक्म क्या हो! हद हो गई—हद! कुछ सुना तुमने?'

'खूब सुना, खूब।'—गोधन साह मुसकी मारने लगे।

उधर नबी मियाँ, बेनीमाधव, बिहारी भी पहुंच गए।

'भाई, बड़ी हिम्मत का काम किया !'—बेनीमाधव ने कहा।

'लो, उसी का था तो करता क्या ?'—सूरज सिंह ने जुल दिया।

फिर ठहाका—ठहाका पर ठहाका। बाहर राहगीर भी ठमक कर गोधन की दूकान की ओर देखने लगे।

'तो गोधन, मँगाओ इसी नाम पर चार-चार कचौड़ी और एक-एक चुक्कड़ चाय—और हाँ, कुछ गर्म-गर्म जलेबियाँ भी।'—सूरज सिंह ने ठहाका लगाते हुए ऑर्डर दिया।

'हाँ भाई, हाँ, बड़ी सर्दी है—और इस खबर ने बड़ी गर्मी ला दी है, इसलिए फिर कुछ हो ही जाय।'—नबी मियाँ ने भी कहा।

'तब तक गोधन भाई की ओर से एक-एक सिगरेट ही शुरू हो—यह निर्दयी पछैया पंजरियों को भी कँपा देती है।'—बिहारी सिंह ने प्रस्ताव पेश किया।

'हाँ-हाँ, जरूर।'

'गोधन, तुम्हारा क्या ख्याल है ?'

'मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। अब खुफिया छोड़ रहा हूँ—रात तक सारी बातें मण्डली को जरूर बता दूँगा।''''ऐसा आसान नहीं पता लगा लेना। फिर भी कोई न कोई सुराग तो मिल ही जाएगा।

'चाचा, कुछ सुना गया है ?'.....बसन्तपुर बाजारसे सामान खरीद कर जब शाम को बन्दूकी लौटा तो उसने कहा।

बूढ़े रामभजन सिंह गुड़गुड़ी पी रहे हैं। दलगंजन सिंह भी बगल में वहीं बैठे हैं।

'नहीं, क्या खबर है ?'—रामभजन सिंह ने कोई कौतूहल नहीं दिखाया।

'चाचा, गजब हो गया !'

'अरे, अब क्या गजब होगा ! दलगंजन के ग्रामपंचायत के चुनाव हारने से भी बढ़कर अब क्या और कोई गजब होगा ? उफ, मेरे बुढ़ापे का आखिरी सदमा !'—वह चुप लगा जाते हैं।

'चाचा, आपने चुनाव के परिणाम को बड़ी संजीदगी से ले लिया है—यह अच्छी बात नहीं। मैंने आपको कितना समझाया, मगर आप इस बात को अपने दिमाग से निकाल नहीं पाते ..।' —दलगंजन सिंह ने कहा।

'तुम हो बुद्धू !—बुद्धू ! बाप-दादा की कमाई हमने मिट्टी में मिला दी। जो साले हमारी पत्तल की जूठन पर पलते थे वे ही अब सर पर बैठ कर हग रहे हैं। या भगवान् ! जमाना क्या-से-क्या बदल गया ! यह जमाना आने के पहले हम ही उठ जाते तो अच्छा था। अब बड़का की इज्जत कैसे बचेगी ?'

रामभजन सिंह का रुख देखकर दलगंजन सिंह सहम जाते हैं। कुछ देर को सारा वातावरण थिर हो गया। भीतर-भीतर एक छटपटाहट—एक बेचैनी।

'हाँ, तो तुम्हारा क्या गजब था—जरा मैं भी सुनूँ ?'—राजभजन सिंह ने गुड़गुड़ी पीते हुए कहा।

'चाचा, गजब हो गया। अस्पताल में कोई औरत अपना बेटा फेंक गई है और डाक्टर उसे अपने घर ले जाकर पाल रहा है। कह रहा है—अब यह हमारा बच्चा कहलाएगा।'

'ऐसा....?'—रामभजन सिंह निहाली फेंककर आवेश में खड़े हो गए। डाक्टर के खिलाफ वर्षों से उनके अन्तर में सुलगती आग आज भड़क उठी।

'साला इतना हरामजादा निकलेगा—इसकी मुझे कभी उमीद न थी। बड़ा भारी फेलाड़ है। उसे शरीफों के घर में घुसने नहीं देना चाहिए। अपनी बहू-बेटियों को उससे दिखाना तो अब बन्द ही कर देना चाहिए। पक्का आवारा है। अधर्मी, पापी! उफ, घोर कलियुग आ गया!....नौ महीने पेट में रखकर बिना मोह-माया के यों फेंक कर भाग जाना! मालजादिन—छिनाल!....और इस डाक्टर को तो अब यहाँ से बदलवाना होगा वरना कितने दिनों हम बिना किसी डाक्टर को घर पर बुलाए रह सकेंगे? कल मनीस्टर को तार भेजना है, एक मुख्य मंत्री को भी।....और ऐ दलगंजन, तुम तो ग्रामपंचायत के सदस्य हो—पाठक से कहो कि वह भी जोर लगाए। आखिर वह भी तो इस कुकर्म का, इस अधर्म का खुलकर विरोध करेगा।'

'हाँ, जरूर। कल ही मैं पंचायत-ऑफिस में जाऊँगा और मुखिया से भी एक तार भेजवाऊँगा। हद हो गई!'

रामभजन सिंह दालान में टहल रहे हैं और सोच रहे हैं—डाक्टर ने

कभी हमारी मदद न की, जब-जब मैं कोई सिफ़ारिश लेकर गया, इसने मेरी एक न सुनी। चमारों के खून के केस में यदि इसने हमारा साथ दिया होता तो थाने को इतनी भारी रकम चटाने से मैं बरी हो जाता। पाजी अबकी बार पंजे में पकड़ाया है। अब यह छटक नहीं सकेगा। पकड़कर रगड़ दूँगा। बच्चू को अब गाँव छुड़ाकर दम धरूँगा। इस इलाके से इसने लाखों रुपये कमाए''''।—रामभजन सिंह टहल रहे हैं और बीच-बीच में गुड़गुड़ी का कश भी लेते जा रहे हैं।

'अरी, ओ सुखिया की दादी ! कुछ सुना है तुमने ?'—डोमन ने अपनी झोपड़ी में घुसते ही कहा।

'अरी, ओ अंधरी'''!'—उसने दुबारा पुकारा।

'का दिनभर सरापते रहते हो। सुनती तो हूँ—कहो ना'—वह लुंज बूढ़ी औरत खाट पर से ही चिल्लाई।

'अरे, डाक्टर का हाल कुछ सुना है''''?'

'का ?'

'अस्पताल में कोई अपना बेटा फेंक गई थी, उसी को वह अपने घर में रख कर पाल रहा है।'

'अरे बाप रे बाप ! हाय सायरी माई ! ई का सुनत बानीं !—मार ससुरा के। अरे, कौना के बेटा ह ?'

'कोई औरत दो दिनों से अस्पताल में थी—एक बच्चा जनमा कर चलती बनी।'

'मार छिनार के। होई कोई बेवा-मुसमात—बेटा गिरा के मुँहजली भाग गइल।'

डोमन खूब हँस रहा है—हँस रहा है। कहता—'मैं सब जानता हूँ—सब।'—मटकी मारता है।

'त कह ना!'

वह बुढ़िया के समीप जाकर उसके कान में कहने लगता है—'वही उस पँड़ाइन का बेटा है।'

'कौन पँड़ाइन?'

'मंगर पाँड़े की साली। हम तो बराबर उसकी खिलकत देख रहे थे, मगर किसी से कुछ कहते नहीं थे। इधर तो पाँड़े नइहर जाने का बहाना बनाकर उसे घर में छिपाए रहता था। मगर मैंने एक दिन खिड़की से झाँककर उसे देख लिया था और जब उसके फूले हुए पेट पर नजर गड़ी तो सब ताड़ गया। अब पाँड़े भी छुट्टी लेकर कहीं भाग गया है। आज ही मैं लकड़ी माथे पर ढोएं-ढोए उसके घर से लौट आया हूँ। अरे, चुप-चुप! सुखिया आ रही है—पीछे-पीछे जिगना-बलचनवा भी।'

दोनों चुप हो गए।

बलचनवा के हाथ में एक बड़ी मछली थी।

डोमन उसे देखते ही तमतमा उठा तो उसने झट कहा—'देखो बाबा, बिगड़ो नहीं, स्टेशन से लौट रहा था तो रास्ते में देखा—ताल में जाल

लगा है—आज दस रुपया इनाम कमाया था—दुलहा-दुलहिन के परिछावन में—बस, उसी से खरीद लिया—देखो, अब बिगड़ो नहीं—नहीं तो ठीक न होगा।'

डोमन के मुँह में पानी भर आया।

'वाह रे बलचनवा! वाह! खूब किया तुमने!—ओ री सुखिया! आज खूब तीता मसाला लगाकर बना तो मछली—फिर देख, तुम्हारे लिए कैसा दुलहा चुन देता हूँ—हाँ, देखना!'

देखते-ही-देखते गाँव में एक पूरा बवण्डर खड़ा हो गया। क्या अमीर और क्या गरीब—सभी वर्ग के लोग डाक्टर के खिलाफ हो गए—इसे गाँव से निकालना है—निकालना है—इसी का आन्दोलन खड़ा हो गया।

गाँवों की जनता गाँवों की ही तरह सोती रहती है—नेतृत्व चंद लोग ही करते हैं और अपने स्वार्थ के तमंचे पर सारे गाँव को जब जैसी आवश्यकता होती है—कस देते हैं। डाक्टर से सभी पार्टीवाले चिढ़ते थे क्योंकि वह सबका नकाब उतार देता था। इस बार उन्हें उससे बदला सधाने का बड़ा सुन्दर अवसर हाथ लग गया। बस, सभी नेता मिलकर उस पर पिल पड़े। सूरज पूरब से हटकर पच्छिम में उग गया जब पाठकजी के साथ मंच पर बाबू रामभजन सिंह भी आकर बैठ गए।

'भाइयो! डाक्टर ने गाँव की भावनाओं पर आघात किया है, हमारी इज्जत पर प्रहार किया है। उसे अब यहाँ से बदलवाना होगा, नहीं तो इस गाँव की मर्यादा मिट्टी में मिल जाएगी। भला कोई नापाक बच्चे को अपने घर में बाइज्जत रखता है! हम सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास कर बी० डी० ओ०

के यहाँ चलें और उससे कहें कि वह अस्पताल की कमिटी से डाक्टर के तबादले के लिए सिफारिश करे। मैं कल ही मिनिस्टर से मिलकर ऑर्डर करवाने का प्रयास करता हूँ।' —पाठकजी एक सुर में कह गए।

'भाइयो! डाक्टर ने इस गाँव की इज्जत मिट्टी में मिला दी। हमारे नवजवानों को बरबाद कर देने की एक मिसाल खड़ी कर दी। अब इसको यहाँ से हटवा देने में ही चैन है। यह बच्चा किसी गैर का नहीं—डाक्टर का ही है। यह खुद उस मुसम्मात से फँसा था। यह कभी दूध का धोया नहीं रहा। आज पोल खुल गई तो सिद्धान्त बघार रहा है। मैं मुखिया जी के साथ हूँ और इस बात पर आखिरी दम तक उनके साथ रहूँगा········।' —बाबू रामभजन सिंह बड़े जोश में बोल गए।

आज मेढ़की को भी जुकाम हो गया है। जो कभी लीडरी का ख्वाब भी नहीं देखते थे, वे सब मंच पर आकर अपना गला साफ करने लगे। बन्दूकी और किसुना बीच-बीच में जनता को भड़काते रहे। एक खासा अच्छा मसाला आज उनके हाथों लग गया है।

संध्या समय डाक्टर साहब के दालान में बी० डी० ओ० साहब और टैनी लाल जुट गए हैं। तीनों चाय पी रहे हैं और गुफ्तगू चल रही है—

'डाक्टर ! मामला तिल का ताड़ हो गया—इसमें क्या किया जाय ?'

'यही न आप गलत समझते हैं। यह कभी तिल नहीं था—ताड़ ही था बराबर। लावारिस बच्चे को किसी शरीफ के घर में रखकर बाइज्जत उसे पालना कभी भी तिल नहीं हो सकता। मेरे खिलाफ आयोजित आज की सभा में जिन-जिन लोगों का गरमागरम भाषण हुआ, वे गाँव की जाने कितनी बहू-बेटियों को बरबाद कर चुके हैं और जाने कितनों का गर्भ गिरवा चुके हैं और कितने नवजात बच्चों को नदी में या ताल में फेंकवा चुके हैं। नरेन्द्र बाबू ! चमाइन से किसी का पेट नहीं छिप सकता और न किसी की हवेली का 'क्राइम' ही। यदि मैं भी सबकी दास्तान मीटिंग में पेश कर दूँ तो कितनों को गश आ जाय और अस्पताल की चमाइन को जेल की हवा खानी पड़े। खैर, छोड़िए इन बातों को, मेरा समय तो पूरा हो गया है। मुझे तो आज नहीं तो कल यहाँ से चला जाना ही है। नौकरी-

पेशा इन्सान, एक जगह टिका तो रह नहीं सकता। इसलिए मैं ही यहाँ से जा रहा हूँ। मैंने कम्पाउण्डर के मार्फत आज सिविल सर्जन को छुट्टी की अर्जी भेज दी है। 'रिलीफ' आते ही मैं यहाँ से चल दूँगा और फिर छुट्टी में ही यहाँ से अपनी बदली करवा लूँगा। मैं चाहता हूँ कि यहाँ से बहुत दूर हट जाऊँ ताकि वह बच्चा एक स्वस्थ और सुघर इन्सान बन सके—सभी 'कम्प्लेक्स' से दूर। उसे तो मैं पता ही न लगने दूँगा कि वह रमेश का सचमुच छोटा भाई नहीं है।'

इतना कहकर डाक्टर बड़ा गम्भीर हो गया।

डाक्टर के मिजाज से नरेन्द्र खूब परिचित है। वह इस विषय में आगे कुछ कह न सका।

डाक्टर को बहुत गम्भीर बना देखकर टेनी बाबा ने कहा—'डाक्टर साहब! बात तो आप ठीक फरमा रहे हैं, मगर यहाँ आपकी 'प्रैक्टिस' बहुत अच्छी जम गई थी। यहाँ की जनता आप पर भरोसा रखती थी—आपके जाते ही एकदम टुअर हो जाएगी। फिर इतनी आसानी से आप कैसे भाग सकते हैं? यह तो एक तूफान है—ये आया और वो गया। इसमें घबड़ाने की कोई बात नहीं।'

'नहीं बाबा, मैं घबड़ाता तनिक भी नहीं। आप सही कहते हैं कि मेरी प्रैक्टिस खूब जम गई है और यहाँ की जनता भी मुझ पर भरोसा करती है और मेरा तो यह प्लैन ही था कि कुछ दिनों बाद नौकरी छोड़कर यहीं जम जाऊँगा, मगर अब मैंने अपनी राय बदल दी है। इस दमघोंट वातावरण में उस नवजात बच्चे को यहाँ पालना ठीक नहीं। वह पनप न सकेगा और बेमौत मारा जाएगा। उसकी खातिर मुझे बसन्तपुर छोड़ना ही पड़ेगा।

आप यह गलत समझते हैं कि मेरे इस कदम को यहाँ की जनता कभी भी पसन्द करेगी। वह बराबर मुझे सन्देह की नजर से देखेगी। रात की अँधियारी में चाहे जितने 'क्राइम' यहाँ हो जायँ, मगर दिन के उजाले में कोई उसकी जिम्मेवारी लेने को तैयार नहीं। मैं ग्रामपंचायत, बाबूगंज के बाबुओं तथा यहाँ के नेताओं की तनिक भी परवा न करता। ये सब नकाब पहिन कर सभा में उतरते हैं। पाठक हों तो, दलगंजन सिंह हों तो····या सूरज सिंह, बेनीमाधव, बिहारी या सोहन साह और गोधन साह हों तो—ये सभी एक ही थैले के चट्टे-बट्टे हैं। शोषक! शोषक!! कोई पैसे से शोषण कर रहा है तो कोई सब्जबाग दिखाकर वोट लेकर शोषण करता है। इन्हें मैं खूब पहिचानता हूँ।····यहाँ से चला जाना मेरा अन्तिम निर्णय है। आपलोग मुझ पर कोई जोर न दें। बाबा, आप तो शायर हैं—कुछ और सुनाइए।'

'मैं क्या कहूँ—बूढ़ों की अब सुनता ही कौन है?—जिनकी जवानी, उनका जमाना! और, हर रंग तो उसी सिरजनहार की रंगसाजी का नमूना है, हर सूरत उसी की सीरत की नुमाइश है—

इलाही कैसी-कैसी सूरतें तूने बनाई हैं,
कि हर सूरत कलेजे से लगा लेने के काबिल है।'

'वाह बाबा! खूब—क्या खूब!'

सभी ठहाका मारकर हँस पड़े। कुछ देर तक खूब हँसते रहे। फिर नरेन्द्र ने कहा—'तुम्हारे जाते ही यहाँ की धरती कम-से-कम मेरे लिए तो बिलकुल वीरान हो जाएगी। टेनी बाबा को छोड़कर कोई भी यहाँ न होगा

जिससे कुछ बातें भी कर सकूँगा। उफ, ऐसा दमघोंट वातावरण है मेरे लिए इस गाँव का।'

'नरेन्द्र बाबू! आपका भी तो एक-न-एक दिन तबादला हो ही जाएगा। फिर फिक्र कैसी! हम दोनों तो कुछ ही दिनों के लिए यहाँ एक साथ हमसफर थे। फिर आप कहाँ—मैं कहाँ!'

'मगर दुनिया गोल है भाई!—फिर कहीं-न-कहीं मिल ही जाएँगे।'

'इसमें क्या शक है!'

'और हाँ, मैं भी तो अब कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ। मैंने विश्व-विद्यालय में रिसर्च करने को अर्जी भेज दी थी। रजिस्ट्रार का खत आया है कि वह अब स्वीकृत हो गई है। यह नौकरी तो मैंने माँ का मन रखने को कर ली थी। इसमें मुझे कोई रुचि नहीं—कोई तरंग नहीं। फिर विश्व-विद्यालय वापस जा रहा हूँ—रिसर्च करूँगा।'

'बहुत अच्छा! तो आप मुझे अकेले ही यहाँ फँसाना चाहते रहे? बड़े छिपेरुस्तम हैं आप! रिसर्च का आपका विषय क्या होगा?'

'मास अनरेस्ट इन इंडिपेंडेंट इंडिया।'

'खूब! बहुत खूब!'—डॉक्टर ठठाकर हँस पड़ा।

'गोया मैं भी आपके रिसर्च का विषय बन जाऊँगा।'

दोनों जोर से हँस पड़े। टेनी लाल चुप-के-चुप बने हैं—बुत की तरह; तो नरेन्द्र ने पूछा—

'क्यों बाबा! ऐसी खामोशी क्यों?'

'मैं तो यही सोच रहा हूँ कि पचासी वर्ष का यह बूढ़ा अब यहाँ से

भागकर कहाँ जाएगा !—आपलोग जब तक रहे—मन आप में रमा रहा—मैं भूलता रहा अपना दुःख । मगर अब तो रात और दिन यहाँ से सदा के लिए कूच करने की तैयारी में ही कटेंगे ।'

'उठिए-उठिए, आप भी क्या मनमरे की बात करने लगे ! अभी आप सौ वर्ष जीएँगे—और भविष्य में पूरी आस्था के साथ जीएँगे । ऐसा दिल मलीन न करें ।'

इतना कह कर नरेन्द्र वहाँ से चलने को खड़ा हो गया । बाबा भी उसके साथ हो लिये ।

डाक्टर साहब अस्पताल के फाटक तक दोनों को छोड़ने आए तो नरेन्द्र ने कहा—'अच्छा डाक्टर, फिर मिलेंगे । तुम्हारा 'रिलीफ' आने में अभी एक-दो दिन तो लग ही जाएँगे ।'

'हाँ-हाँ ।'

नरेन्द्र और टेनी लाल गढ़ की ओर बढ़े चले जा रहे हैं ।

अँधियारी घिर आई है । नरेन्द्र अपना टॉर्च जला देता है—'देखिए बाबा ! बचकर चलिएगा । रास्ता बड़ा खराब हो गया है । भला हो बिन्दा प्रसाद ओवरसियर का और शामलाल ठेकेदार का—एक बरसात भी नहीं देख पाता यह रास्ता ।'

बाबा चुप ।

'क्यों बाबा ! क्या सोच रहे हैं ?'

'यही कि इतिहास के पन्ने बदलते हैं, इतिहास के किस्से नहीं बदलते ।'

'हाँ बाबा ! यह तो आप ठीक कह रहे हैं ; मगर इतिहास की दृष्टि तो बदलती है !'

'जरूर-जरूर, वह यदि नहीं बदलेगी तो इतिहास के पन्ने कैसे बदलेंगे ?'

दोनों फिर चुप हो गए और उस अन्धेरे में टॉर्च की रोशनी के सहारे गढ़ की ओर बढ़ने लगे ।